चरन् वै चरन्

(स्फुट विचार संग्रह)

लेखक

रामाश्रय तिवारी

पूर्व उप-परिवहन आयुक्त, उत्तर प्रदेश

प्रथम संस्करण – 2024

© लेखक

रामाश्रय तिवारी
पूर्व उप-परिवहन आयुक्त, उत्तर प्रदेश

प्रकाशक
रामाश्रय तिवारी
117-सी, टैगोर टाउन, प्रयागराज
मूल्य : 250/-

ईश वन्दना

वक्रतुण्डं च वागीशां विष्णुं च प्रतिपालकम् ।
शिवं परमेश्वरं वन्दे प्रणमामि यथाबलम् ।।
अनन्तानन्त लोकानां कर्तारं परमेश्वरम् ।
ध्याये जगतः मूलं मायाशक्तिसमन्वितम् ।।

विषय सूची

वैयक्तिक विषय

प्रकरण संख्या

1, 3, 9, 10,11, 21, 24, 35, 30, 31, 32, 35, 36, 38, 43, 44, 45, 46, 49, 50, 54, 55, 60, 61, 62, 63, 64, 69, 70, 72, 73, 79, 80, 83, 84, 85, 86, 87, 93, 98, 106, 107, 110, 113, 114, 117, 119, 121(ख), 122, 124, 130, 133, 136, 142, 143, 148, 150, 167, 170, 171, 172, 177, 178, 179, 180, 181, 183, 188, 189, 190, 191, 194, 195, 200, 208, 210

सामाजिक विषय

प्रकरण संख्या

4, 5, 6, 7, 8, 14 15, 17, 18, 22, 23, 26, 27, 29, 33, 34, 37, 40, 42, 48, 53, 56, 57, 58, 59, 65, 67, 68, 71, 75, 78, 81, 82, 88, 89, 90, 92, 94, 95, 97, 99, 101, 102, 103, 104108, 109, 112, 115, 116, 118, 121, 123, 126, 127, 128, 129, 131, 134, 135, 138, 139, 140, 144, 145, 147, 154, 156, 158, 159, 160, 163, 164, 165, 166, 169, 170 (ख), 173, 174, 175, 176, 182, 184, 188, 187, 199, 203, 204, 205, 206, 209, 211, 212

राजनैतिक विषय

प्रकरण संख्या

2, 12, 13, 16, 19, 20, 28, 39, 41, 47, 51, 56, 66, 74, 76, 77, 91, 96, 100, 105, 111, 120, 125, 132, 139, 146, 149, 151, 152, 153, 155, 157, 161, 162, 168, 185, 192, 193, 196, 197, 198, 201, 202, 207

भूमिका

परमेश्वरे च शात्रेषु या श्रद्धा अस्ति हृद्गता ।
तां प्रकाशयितुं अत्र वाग्देवीं नतोऽहम् ।।
सा श्रद्धा कार्यव्यवहारे मनसः निग्रहे तथा।
बुद्धिविश्वासरूपेण प्रकटी भवतु सर्वथा।।

भूमिका का उद्देश्य पुस्तक में निहित सामग्री का संक्षिप्त परिचय देना है। लिखने का विषय, उसकी विधा, इसके लिए प्रेरणास्त्रोत तथा प्रयोजन आदि अनुबन्ध चटुष्ट इस पुस्तक में भी वही है जो हमारी पूर्व प्रकाशित पुस्तक ''चरैवेति'' में थे। नाम भिन्न होने पर भी यह कृति ''चरैवेति'' पुस्तक के भाग-दो की तरह है। इन बातों को उसके ''आत्मनिवेदन'' शीर्षक में लिखा गया है। पिष्टपेषण आवश्यक नहीं लगता है। इस पुस्तक में विवेचित विषयों को वर्ष 2021 तथा 2022 में फेसबुक में प्रकाशित किया है। उन्हीं का संग्रह इसमें है। इसमें कुछ प्रकरण तात्कालिक घटनाओं को लक्ष्य करके लिखे गये हैं। उन घटनाओं के संदर्भ में प्रकरण स्पष्ट रूप से समझ में आयेगा।

''गच्छन् पिपीलिका याति योजनानि शतान्यपि'' की उक्ति हमारे लेखन में भी चरितार्थ है। थोड़-थोड़ा स्वान्तः सुखाय लिखते रहने पर एक पुस्तक की सामग्री तैयर हो गई है। इन स्फुट विचारों से हमारी संस्था श्री भुवनेश्वरी विद्या प्रतिष्ठान के उद्देश्यों की पूर्ति में सहायता मिलेगी। अतः इसे प्रकाशित करना भी स्वधर्म-पालन का अंग है। इससे आत्महित एवं जनहित दोनों की साधना होगी। अभ्युदय और निःश्रेयस् के कारक धर्म को प्रकाशित करना, आदर्श नागरिक पैदा करना, समाज को सभ्य तथा संस्कृति का पोषक बनाना एवं देश में राजधर्म से अनुप्रणित शासन तंत्र की स्थापना के लिए प्रेरणा देना इन संदेशों का उद्देश्य है।

लेखन में मैं तो निमित्त मात्र हूँ। इसके लिए प्रेरणास्त्रोत वाग्देवी भुवनेश्वरी

हैं। उनका आशीर्वाद यथावत रहेगा तो अगले वर्ष भाग-तीन के रूप में 'मधु बिन्दु' नामक अगली पुस्तक भी क्रम में प्रकाशित हो सकेगी।

विषय सूची में वैयक्तिक सामाजिक तथा राजनैतिक शीर्षकों में पुस्तक के प्रकरणों को विभाजित किया गया है। यह विभाजन विशेषता के आधार पर है। सामान्यतया सभी प्रकरणों में निहित संदेशों के उद्देश्य संश्लिष्ट है। इन संदेशों को प्रकाशित करने का प्रयोजन उपदेश देना या प्रदर्शन करना नहीं है। इनको अपने जीवन-पद्धति में अपनाने और आदर्श स्वरूप स्मरण रखना भी महत्वपूर्ण उद्देश्य है। ''पर उपदेश कुशल बहुतेरे। जे आचरहिं ते नगर न घनेरे'' की उक्ति को चरितार्थ करने से बचने का पूरा प्रयास किया जायेगा। जनहित के साथ आत्म-संयम भी इस लेखन से संभव है।

अपने प्रयास में उपकारक तथा शुभेच्छु व्यक्तियों का आभार स्वीकर करता हूँ। एतद्वारा, अपने विचारों को परीक्षण हेतु विद्वज्जनों के समक्ष प्रस्तुत करते हुये आशीर्वाद की आकांक्षा कर रहा हूँ।

जो कवित्त बुध नहिं आदरहीं।
सो श्रम वादि बालकवि करहीं।।

शुभमस्तु,

चरन् वै चरन्

(1)
सदाचार की आवश्यकता

सदाचार, सत्यभाषण और सद्भावना ही वह योग्यता है जिससे अक्षय सुख तथा अमर कीर्ति मिलती है। सुदृढ़ आधार के बिना बना महल शीघ्र धराशायी हो जाता है तथा प्राप्त की गई उन्नति उतने ही बड़े पतन का कारण बनती है।

सत्य और सदाचार से सद्भावना बनती है। भावना ही फलीभूत होती है। दुर्भावना से किया गये, प्रदर्शन मे अच्छे कार्य भी, बुरे परिणाम और निन्दा के कारण बनते हैं। भावस्तत्र प्रयोजकम्-याग्यवल्क्य स्मृति। सरल उपायों से नहीं, कठिन साधना से, मात्र सदाधार स्थापित कर लेना भी प्रशंसनीय है।

(2)
राजधर्म मे अर्थ की पवित्रता

अर्थे शुचिः स शुचिः न मृद्वारि शुचिःशुचिः। –मनुस्मृति।

अर्थात् जीवन को पवित्र रखने के लिये धन की पवित्रता अनिवार्य है। ऐसा न करने पर,अपवित्र धन के प्रभाव से, पवित्रता का नाटक करनेवाला व्यक्ति, कीचड़ मे फंसी गाय की तरह कष्ट पाता है।

यह बात वर्तमान में, किसान आन्दोलन के कारण उत्पन्न, अपनी सरकार की मजबूरी और दुर्दशा को देखने पर प्रत्यक्षतः सिद्ध हो रही है। चुनाव में प्रभूत धन देने वाले उद्योगपति, उस धन का कई गुना वसूल करना चाहते हैं। किसान अपने सिद्धांत पर अडिग हैं। सरकार छटपटा रही है। देश की बदनामी हो रही है। परिणाम चाहे जो निकले पर अर्थ की पवित्रता का उपदेश सत्य सिद्ध है। आज या कल सत्य की विजय होगी।

हमें शिक्षा लेनी चाहिए कि धन के बल पर आश्रित रहने की जगह सद्भावना और पवित्रता के संवल पर राष्ट्रकल्याण और लोकसंग्रह करने का प्रयास करें। इससे सही राजधर्म का पालन होगा। सफलता मे विलंब हो सकता है, किन्तु निर्भय और निर्विवाद रहकर स्थायी व्यवस्था दी जा सकती है।

(3)
परम अनुशासन

भीषास्माद्वातः पवते।भीषोदेति सूर्यः।
भीषास्मादग्निश्चेन्द्रश्च। मृत्युर्धावति पञ्चम इति।।

तैत्तिरीयोपनिषद् 2/8/1

अपनी माया शक्ति से रचित,इस सृष्टि का संचालन स्वयं ब्रह्म ही करता है।मायिक शक्ति से उत्पन्न कार्यकर्ता, उसी अदृश्य कर्ता के भय से, अपने धर्म का पालन करते हैं। उसी के भय से वायु, सूर्य, अग्नि, इन्द्र आदि देवता अपने कार्यों को करते हैं तथा मृत्यु भी दौड़ते हुए पहुंचती है। ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश उसी व्यवस्था में, विधायिका,कार्य-पालिका और न्यायपालिका की शक्तियां हैं। परम शक्तिशाली और सन्निकट होने पर भी, वे उसी अदृश्य परमसत्ता के अधीन हैं।

ऐसा समझने पर क्षुद्र पदाधिकारी मानव का अहंकार मूर्खता ही लगती है। अनुशासन मे रहकर स्वधर्म का पालन ईमानदारी से करते हुए, ब्रह्मदण्ड से बचना बुद्धिमानी है। लोक का कोप ही ब्रह्मदण्ड बन सकता है, अतः लोक से भी भय रखना पड़ता है।

(4)
फिसल गये तो हरगंगा

स्वतंत्र भारत में, बिना राजनीतीकरण के, किसानों के आन्दोलन को सफल देखकर भविष्य के लिए बड़ी अच्छी आशाएं बनती हैं। एक सशक्त और दृढ़निश्चयी सरकार के समस्त प्रयासों को विफल होते देखकर, यह लगता है कि देश के कुछ हिस्सों मे समाज जीवन्त है। पूरे देश मे सशक्त समाज की स्थापना से ही वास्तविक जनतंत्र संभव है।

अब, सरकार को आदर के साथ किसानों की बात मान लेनी चाहिए। इससे किसान प्रसन्न हो जायेगें और दोनों की इज्जत बढ़ेगी। पुरानी कहावत है - फिसल गए तो हरगंगा। जैसे हरगंगा कहने मे अच्छाई है उसी तरह किसानों को आदर देने में भी।

(5)
राजहठ

दार्शनिक डायग्नीज धूप मे बैढा था। सिकन्दर ने उसके पास जाकर कहा कि मैं सिकन्दर आपकी कौन सी कमी को पूरी कर दूं। धूप में बैठे डायग्नीज ने कहा आप हमारी धूप छोड़ दें। सिकंदर को कुछ बुरा लगा लेकिन वह डायग्नीज की महानता से प्रभावित हुआ। सत्य है – *जाको कछू न चाहिये सो शाहन को शाह।*

जिसको लाभ देना हो उससे पूछकर कोई काम करना उचित है। बिना मांगे कोई व्यवस्था अस्वीकार करने योग्य हो सकती है। हठ करने पर हानि ही हो सकती है। शासक यदि किसी वर्ग को बलात् लाभ पहुंचाना चाहे तो यह राजहठ कहा जायेगा। यह काम निन्दनीय है, अतः सिकंदर महान ने भी ऐसा नहीं किया।

(6)
स्त्री की दृढ़ सुरक्षा

न गृहाणि न वस्त्राणि न प्राकारस्तिरस्क्रिया।
नेदृशा राजसंस्कारा वृत्तमावरणं स्त्रियाः।।

आदि कवि वाल्मीकि

रावणवध के बाद, लंका से सीता को राम के पास लाते समय, विभीषण की आज्ञा से, राजसेवकों के घेरे में, सुरक्षित करके लाया जा रहा था। इसे देखकर राम ने नारी की सुरक्षा के विषय मे उपर्युक्त नीति को समझाया था। घर में बन्द रखने, वस्त्राच्छादित रखने, चहारदीवारी मे रखने, सब को भगाकर एकान्त मे यात्रा कराने, व्यवस्था करके राजसेवकों के पहरे मे रखने आदि से भी स्त्री सुरक्षित नहीं रह सकती है।उसके लिए अभेद्य सुरक्षा कवच, उसका चरित्र ही है। चरित्र ठीक होने पर वस्त्र, रहन-सहन आदि समस्त व्यवहार स्वतः तदनुरूप हो जाते हैं।

वर्तमान समय में, नारी की सुरक्षा के विषय में उपस्थित चिन्ता को दूर करने के लिए, अपनी संस्कृति का चिन्तन हितकारी होगा। विशेष तरह से माता

का, तथा सामान्यतया समस्त समाज का दायित्व है कि अपनी सांस्कृतिक मान्यता से बालिका को भलीभांति अवगत करायें। ऐसा करके हम अपनी समस्या का समाधान करेंगे तथा दूसरों को भी उपदेश दे सकेंगे।।

(7)
दलितोद्धार

अद्वैत दर्शन मे एक कहावत प्रचलित है कि एक राजकुमार, अपने परिवार से बिछुड़कर गड़ेरिया को मिल गया। अपने को गड़ेरिया समझते हुए, वह भेंड बकरी चराने लगा। किसी ने उसे बताया कि तुम तो राजकुमार हो। यह जानते ही वह राजकुमार बन गया। अपनी पहचान होने पर स्वाभिमान जाग्रत हो जाता है।

आजकल दलित शब्द राजनैतिक परिप्रेक्ष्य मे प्रयोग मे आता है। इससे सब प्रकार से हीन और बेबस होने का बोध होता है। किसी जाति को ऐसा कहने पर, उस जाति का स्वाभिमान आहत होता है। अपनी शारीरक, बौद्धिक, आर्थिक या अन्य योग्यता मे कमजोरी के कारण, किसी भी जाति का व्यक्ति दलित हो सकता है। कोई जाति नहीं दलित हो सकती है। हर जाति मे राजभोग करनेवाले मिलते हैं।हर जाति मे सन्त और महापुरुष पैदा हुए हैं। अतः दलित शब्द को जाति का बोधक बनाने पर राजकुमार भी गड़ेरिया बन जाता है। यह अनुचित है।इसके माध्यम से संगठन बनाकर, उसी जाति के लोग अपना राजनैतिक हितसाधन करते हुए अपनी जाति के लोगों का ही शोषण कर रहे हैं। दलितोद्धार के लिए, जातीय संगठन के आधार पर शोषण बन्द कराना तथा सब का स्वाभिमान जाग्रत करना आवश्यक है।

अतः, जाति की मान्यता रखने या संशोधित करने के लिए समाज को स्वतंत्र रखते हुए, राजनीति और सार्वजनिक स्थानों पर इसके आधार पर होने वाला भेद समाप्त करना चाहिए। शिक्षा व स्वावलंबन की व्यवस्था तथा स्वाभिमान के जागरण द्वारा समरस समाज बनाया जाय। वर्ग भेद और उससे होनेवाला झगड़ा इसी से समाप्त होगा।ऐसा करने पर ही सही अर्थ में दलितोद्धार संभव है।

(8)
सेवा मे कुशलता

समाज या देश की सेवा के लिए ये तीन गुण आवश्यक हैंः- अनुराग, ईमानदारी और करने की योग्यता। समाज या देश से प्रेम हो, सत्यनिष्ठा से कार्यकिया जाय और कार्य करने की योग्यता हो तभी सार्थक प्रयास संभव है। इन तीनों से हीन लोगों द्वारा की जारही समाज और देश की सेवा निष्फल है। प्रचार के प्रभाव से, हीन लोग, थोड़ी संख्या मे मिलने वाले योग्य लोगों को हासिये पर ढकेल रहे हैं। इस स्थिति से बचाने के लिए भ्रष्टाचार, अनैतिक आचरण, आरक्षण और संरक्षण को राजनीति से भगाने का उपाय सोचना बुद्धिजीवियों का कर्तव्य है।

(9)
सुनीति

नीति को अनीति से बाधित करने पर बुरा परिणाम होता है। उससे भी बुरा परिणाम अनीति को अनीति से बाधित करने पर होता है। अनीति को बर्दास्त करने पर सबसे बुरा परिणाम होता है। अतः अनीति को नीति से बाधित करना या तदर्थ प्रयास करना ही सुनीति है।

(10)
सम्बोधन

वह, तुम, मैं यह सब सम्बोधन,
सर्वनाममय वह है ब्रह्मन,
श्रद्धासुमन तदर्थ समर्पन,
निज-स्वरूप का चाहूं दर्शन।
जाउं कहां अब खोजन बन बन,
देहु ज्ञानमय पावन दर्पन।

\- ब्रह्मार्पणमस्तु।

(11)

स्वाभाविक मित्र

संसार मे समस्त संबंध स्वार्थ-मूलक हैं। निःस्वार्थ मित्र किसी को नहीं मिलता है। यहां की मित्रता व्यावहारिक प्रदर्शन है।

सहज और मरणोत्तर काल तक साथ देनेवाला मित्र अपना सत्कर्म ही है। दुष्कर्म करने पर अपना कर्म ही प्रबल शत्रु होजाता है।

आत्मैव आत्मनःबन्धुः आत्मैव रिपुरात्मनः।। गीता।।

(12)

मध्यमवर्ग की व्यथाः राजनैतिक ओषधि

गरीबों से वोट और पूंजीपतियों से नोट लेना, मध्यमवर्ग को महंगाई और उपेक्षा की चोट देना, अपने यहाँ राजनैतिक सत्ता पाने का प्रमुख उपाय हो गया है। किसी के पैर पर सिर तो किसी के सिर पर पैर रखकर, राजनैतिक कौशल का प्रदर्शन हो रहा है। किसान, शिक्षक, वकील, नौकरी पेशावाले, सामान्य व्यवसायी तथा सवर्णों की व्यथा को सुनने मे कोई राजनैतिक लाभ नहीं रह गया है। अतः वे उपेक्षित हैं। महंगाई और अत्यधिक कराधान का प्रभाव उन्हीं पर सर्वाधिक होता है। इसका परिणाम वर्ग-संघर्ष, अराजकता, आन्दोलन, असन्तोष आदि अनेक व्याधियों के रूप मे प्रगट हो रहा है। इस समस्या का समाधान राजनैतिक तरीके से मध्यम-वर्ग को ही करना है।

मध्यम-वर्ग के पास बुद्धिबल तथा नैतिकता दोनों उपलब्ध हैं। संगठित और उत्साह सम्पन्न होने की आवश्यकता है। अनीति का दमन सुनीति से होता रहा है। इस दिशा मे श्रीगणेश होचुका है। यहां लोकतंत्र और रामराज्य नई बात नहीं हैं। भारतीय संस्कृति और आधुनिक वैश्विक परिवेश पर समन्वित विचार के साथ, भारतीय लोकतंत्र की स्थापना के लिए एक नए राजनैतिक संगठन की नीव डाली जा रही है। इसका एक ऐसा संविधान बना है जो स्वतंत्रता की लड़ाई को सार्थक बनाएगा। अतः, इसमें अन्य दलों के उद्देश्यों से बहुत भिन्नता है। पाश्चात्य प्रभाव तथा समाज की गुलामी की आदत, अनैतिकता तथा भ्रष्टाचार से मुक्ति दिलाना और स्वाभिमान की प्रतिष्ठा करना इसकी प्राथमिकता है। इस कार्य मे सहयोग देना स्वतंत्रता संग्राम का ही एक स्वरूप होगा।

इसके पहले, कंटकशोधन शीर्षक के अन्तर्गत एक संदेश फेसबुक पर भेजा गया था।उसी क्रम मे यह दूसरा पदक्रम है। संगठन के चाणक्य और चन्द्रगुप्त प्रकोष्ठों का गठन पूर्ण करके अन्य तीन को भी जोड़ना है। अकेले नहीं, बहुत लोगों की सम्मति से चाणक्यनीति की स्थापना होगी। इसके सफल होने पर राक्षस का भी सहयोग मिल सकता है।यह देखा गया है। इस अस्सी वर्ष की उम्र में, प्रेरणा द्वारा, चन्द्रगुप्तों की परंपरा चला देने पर, यह प्रयास सफल होगा।

इस प्रयास की सफलता के समय-सीमा का आकलन अभी नहीं हो सकता है। जन सहयोग पर निर्भर होना पड़ेगा। अगली पीढ़ी से विशेष आशा है।

(13)
राजनीति का आदर

बहुत से लोग राजनीति को चरित्र के दूषण और मानसिक अशांति का कारण मानने लगे हैं। यह मानना, वर्तमान हालात का प्रभाव है।चिन्तन करने पर,इस मान्यता मे संशोधन हो सकता है।प्राचीन काल से अब तक के अनुभवों के आधार पर यह प्रमाणित होता है कि राजनीति का स्वरूप, युगानुसार बदलता रहा है किन्तु सत्य और धर्म की अवहेलना करने की कुनीति कभी नहीं मान्य थी। बेन जैसे राजाओं की कुनीतियों का निवारण, ऋषियों द्वारा तत्काल किया जाता था। अपने देश में, स्वदेशी शासन में, चार तरह की नीतियां देखी गई हैं। वे हैं-

प्रथम **-** बिना राजा के ही धर्म का शासन सब मानते थे। कोई विचलन नहीं था।

द्वितीय **-** रामराज्य,जिसमे राजा द्वारा धर्म का पालन सुनिश्चित कराया गया। राजा कूटनीति का प्रयोग नहीं करता था क्योंकि उसके लिए कोई पराया नहीं था।उस समय के आदर्श, अरिहुं क अनभल कीन्ह न रामा तथा निजनिज धर्म निरत स्रुति रीती-आदि राजधर्म से प्रतिष्ठित थे।

तृतीय **-** महाभारत काल मे कृष्ण की कूटनीति मान्य हुई। कृष्ण राजा कभी नहीं रहे। वे महाभारत युद्ध के नायक थे। उन्होंने शत्रु को को मारने केलिए सब आचरण मान्य बनाया। लेकिन युद्ध के बाद, युधिष्ठिर ने राजधर्म को ही प्रवर्तित किया।

चतुर्थ **-** चाणक्य के समय मे वृद्धसेवा, सत्य का आचरण आदि के आधार पर शासन के साथ बाहरी लोगों, दुश्मनों से कूटनीतिक व्यवहार को राजनीति बताया गया।

इस तरह सत्य और न्याय को सदैव आदर दिया गया।इससे विचलित होने पर राजनीति रह ही नहीं जाती तथा स्वार्थपूर्ण, निकृष्ट, कुटिल नीति ही प्रगट हो जाती है, जो बेन जैसे राजा की याद दिलाती है। वर्तमान मे ऐसा दिखाई पड़ रहा है।

उपर्युक्त विवरण से यह मान्य है कि राजनीति से पलायन करना ऋषिपरम्परा के अनुरूप नहीं है। अपने और बाहरी, सब तरह के लोगों से समानरूप से असत्य और कुटिल व्यवहार करनेवाली कुनीति का विरोध करना धर्मसम्मत है। इसके लिए राजनीति से पलायन नहीं, उसका आदर करना उचित है।

(14)
नारी का आत्मबल

अरक्षिता गृहे रुद्धाः पुरुषैराप्तकारिभिः।
आत्मानमात्मना यास्तुरक्षेयुस्ताः सुरक्षिताः।। मनुस्मृति।9/12

अर्थात घर की चहारदीवारी के अन्तर्गत, प्रबल सुरक्षा मे भी स्त्री असुरक्षित रह सकती है। जो अपनी सुरक्षा अपने आप करती है, वह स्त्री एकदम सुरक्षित रहती है। क्या ऐसे ऋषि वाक्य अब भी प्रासंगिक हैं? यदि हां, तो इस तरह की बातें, नई शिक्षा नीति एवं समाजशास्त्र में, तथा पारिवारिक स्तर पर सिखाने की व्यवस्था होनी चाहिए। जिस उद्येश्य की पूर्ति अपने वश में है, तथा दूसरा कोई उसे करने मे सफल नहीं हो सकता है उसके लिए पुलिस को जिम्मेदार और दोषारोपित करना दिशाहीन निर्णय है। सामाजिक समस्या के समाधान में राजनीति का प्रवेश उलझन पैदा करता है। दोनों का अधिकार और कार्य का क्षेत्र विभाजित करना पड़ेगा।।

(15)
विनाश और विकास

किसी देश को बरबाद करने के लिए उसकी संस्कृति, शिक्षा तथा स्वाभिमान की भावना को समाप्त करना सबसे कारगर उपाय है। इसके साथ ही जाति, नस्ल, संप्रदाय, क्षेत्र एवं भाषा आदि के विवाद तथा सीमा संबंधी विवाद का बीजारोपण कर देने पर, दुश्मन देश को कुछ करने की आवश्यकता नहीं रहती है। वह मित्र बनने का नाटक कर सकता है।

अपने देश मे यह प्रमाणित हो रहा है। कुटिल नीति के मर्मज्ञ अंग्रेजों ने भेदनीति से, कुछ दलालों को मिलाकर, इसे बर्बाद करने के लिए उपर्युक्त सभी समस्याओं का प्रवेश, हमारे देश व समाज में, कर दिया है। गुलामी की मानसिकता से आक्रान्त तथा सत्ता के लोभ मे हमारे नेता इसे नहीं समझ सके। वे ही देश के लिए समस्या बने हैं। विकास का सम्मोहक नाटक चल रहा है। यहां की राजनीति का आमूल परिवर्तन आवश्यक है। संस्कृति और शिक्षा के वास्तविक उद्धार के द्वारा, स्वाभिमान से जाग्रत समाज होने पर सभी समस्याएं समाप्त होंगी। विनाश को बचाने के बाद ही सही विकास होगा।

(16)
कृषि-कार्य का ऐतिहासिक और आज का स्वरूप

इस देश मे वैदिक काल मे भी कृषि-कार्य का महत्व था। ''अन्नं बहु कुर्वीत'' - बहुत अन्न पैदा करें, यह शास्त्रीय आदेश है। बहुत से परिवर्तन हुए, अनेक आक्रमण और अनेक विदेशियों के शासनकाल मे भी कृषि के क्षेत्र में कोई हस्तक्षेप कभी नहीं हुआ। बांध, नहर, तालाब, कुआं आदि के द्वारा सिंचाई व पैदावार के लिए राजकीय व्यवस्था भी होती थी। किसी काल, यहां तक कि मुगल और ब्रिटिश शासन मे भी किसान की भूमि और उसके व्यवसाय में हस्तक्षेप नहीं हुआ। इसे स्थायी पैतृक धन माना जाता रहा है और किसान बहुत मजबूरी में इसे बेचता है। व्यवसाय के अलावा मर्यादा से भी भूमि का भावनात्मक सम्बंध है। इसमें हस्तक्षेप कोई किसान नहीं सहन कर सकता है।

आज भी मजदूरी के द्वारा जीवनयापन के लिए कृषि ही सबसे बड़ा क्षेत्र है। पचास प्रतिशत से अधिक महिलाओं को कृषि क्षेत्र मे ही काम मिलता है। इसके

आधार पर देश की आधी आवादी जीवनयापन कर रही है। यांत्रिक सहायता से सब काम होने पर करोड़ों लोग बेरोजगार और राज्याश्रित हो जायेंगे।

भावनात्मक कारण एवं रोजगार की व्यवस्था यही दो कारण, कृषि क्षेत्र मे हस्तक्षेप रोकने के लिए पर्याप्त हैं। इनके अलावा भी कई महत्वपूर्ण समस्याएं बताई जा रही हैं। उनको भी नकारना कठिन है। इस समय अन्न आवश्यकता से अधिक पैदा हो रहा है। मंडियों मे जगह नहीं है, और अधिक पैदावार बढ़ाने की आवश्यकता अभी नहीं है। किसान स्वयं नए कानूनों का विरोध कर रहे हैं। अतः, उन्हें लागू करने की जिद शुद्ध राजहठ है। इस हठ में प्रच्छन्न रहस्य की संभावना प्रबल है।

किसान सहस्त्रबाहु हैं जिससे रावण भी हार गया। इस आन्दोलन को विरोधी दल ही कमजोर कर रहे हैं, अतः किसानों की विजय संदिग्ध हो रही है। शासन और किसान के इस संघर्ष मे जीत चाहे जिसकी हो, अगर इसे शीघ्र नहीं समाप्त किया गया तो देश के सामने अप्रत्याशित समस्या उपस्थित हो सकती है। भगवान सद्‌बुद्धि दें।

(17)
पंडित का स्वभाव

अधिगत परमार्थान् पण्डितान् मावमंस्थाः।
तृणमिव लघुलक्ष्मीर्नैव तान् संरुणद्धि।। भामिनी विलास।

विवेक, बुद्धि से युक्त विद्वान को पंडित कहा जाता है। जिसे परमार्थ का भी बोध हो, वह उच्चतम कोटि का पंडित है। ऐसे विद्वान का अनादर कदापि नहीं करना चाहिए।धन या पद-पतिष्ठा के प्रलोभन से वे विचलित नहीं होसकते हैं। ऐसा प्रयास करना उनकी अवमानना ही है क्योंकि यह सब, उस व्यक्ति के लिए तृणवत तुच्छ हैं। यह धरती ऐसे पंडितों से सुशोभित रही है। यह परंपरा बनी रहे, यही संस्कृति का संरक्षण है।

(18)
तब और अब

''जटिलो मुण्डी कुंचित केशः,उदर भरंहित बहु कृत वेषः। भज गोविंदं भज गोपालं गोविंदं भज मूढ़ मते'' (चर्पर पंजरिका)। यह लम्बा स्तोत्र है जो शंकराचार्य के द्वारा रचित कहा जाता है। इसे भजन के रूप में, अद्वैती लोग वैराग्य उत्पन्न करने के लिए, पुराने जबानें में, गाया करते थे। अब, इसका उपयोग भजन में नहीं आचरण में दिखाया जाता है किन्तु इससे वैराग्य नहीं, राग ही उत्पन्न होता है। जटा बढ़ाये,मुण्डन कराये साधुसंतों के साथ ही, टीवी पर उपदेशक, समाज-सेवी, राजनेता और आतंकी भी यही आचरण कर रहे हैं। इन सब की कामनाओं की भूख जितनी प्रबल है, उतनी ही आहार सामग्री, मूर्ख समर्थकों के रूप मे इन्हें मिलती जा रही है।

समाज को धूर्तों का अन्न बनने से बचने के लिए उसे, शत्रु और मित्र, साधु और असाधु, ईमानदार और बेइमान आदि में अन्तर जानना आवश्यक है। इसके लिए ही नैतिकता की शिक्षा पर बल दिया जाता है। सदाधार और नैतिकता ही, दिव्यदृष्ट देकर, आदरणीय और तिरस्कार के योग्य का भेद अवगत करायेंगे। नीचे के स्तर से सुधार इसी उपाय से होगा। ऊपर के स्तर से सुधार के लिए राजनीति मे परिवर्तन करना ही एकमात्र उपाय है।

नैतिक सामाजिक संगठन के द्वारा व्यक्ति, समाज तथा शासन सभी को बदलने का चल रहा उपक्रम सफल हुआ तो, अब भी तब मे परिवर्तित हो जायेगा।

(19)
राजनीति की अनिवार्यता

अपने देश में, प्रबुद्ध लोग भी, राजनीति को भ्रष्टाचार, पाखंड, असत्य, अवसरवादिता आदि दुर्गुणों का पर्याय मानते हुए, इसे काजल की कोठरी की तरह दूरी बनाने योग्य मानने लगे हैं। जनता भी नेता शब्द का प्रयोग उपहासार्थ करती है। यह शोचनीय स्थिति है। गुलामी और निराशा की मानसिकता का ही यह प्रभाव है। इन शब्दों का सही अर्थ, पुनः स्थापित करना आवश्यक है। सामाजिक रचना, सुरक्षा, संस्कृति, सभ्यता के विकास तथा मानवता की रक्षा के

लिए राजनीति का चिन्तन आदि काल से हो रहा है। इसे ही दण्ड, राजधर्म, अर्थशास्त्र जैसे नामों से भी जाना जाता है। सारा सामाजिक व्यवहार इसी के अधीन चलता है। इसके अभाव मे वर्णव्यवस्था, समस्त वेदविज्ञान, संस्कृति तथा सभ्यता का समापन हो जायेगा, मात्स्यन्याय तथा जंगलराज्य स्थापित हो जायेगा। इसीलिए हमारे ऋषियों तथा चिन्तकों ने इसे महत्व दिया।मान्यता यह है कि – '*मज्जेत्त्रयी दण्डविधौ निमग्ने।*' अर्थात राजधर्म के नष्ट होने पर सारी लोक-वार्ता डूब जाती है। अतः, अनिवार्य समझते हुए, राजनीति का चिन्तन तथा इसमें हस्तक्षेप करना, बौद्धिक दृष्टि से समर्थ प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है। उनके कर्तव्यच्युत होने के कारण प्रदूषित मानसिकता के लोग राजनीति को व्यवसाय बना लिए हैं। जल और वायु के प्रदूषित होने पर उनका शोधन होता है। जल के बिना एक दिन तथा वायु के बिना एक मिनट रहना कठिन है। राजनीति का चिन्तन भी इसी तरह अत्यावश्यक है। इसके भी शोधन करने केलिए सक्रिय होना हमारा परम कर्तव्य है।

समाज की सेवा और उसके पुनर्जागरण के लिए प्रयत्नशील व्यक्तियों का प्रयास निष्फल जा रहा है। इस दिशा मे सफलता के लिए पवित्र राजनीतिक चिन्तन करना तथा संगठन बनाना अनिवार्य हो गया है। '*सर्वे पदाः हस्तिपदे निमग्नाः।*' राजनीति सबका मूल है। जैसे जल से सींचा जाय, वैसा फल पैदा होगा। धर्म और नैतिकता के अमृत से सिंचित होने पर, इसी राजनीति से कल्पवृक्ष पैदा हो जायेगा।

(20)
भारतीयता की चाह

स्वतंत्रता के बाद, हम अपनी संस्कृति, शासन प्रणाली तथा समाज का विदेशीकरण करने की योजना बनाये किन्तु असफल रहे हैं। न भारतीय रह गये नही विदेशी। धोबी का कुत्ता न घर का न घाट का। इस दिशाहीनता की स्थिति मे,देश समस्याओं से त्रस्त है। समाजसेवा की भावना से कुछ महान लोग सक्रिय हुए किन्तु राजनीति से परहेज रखने के कारण वे असफल रहे हैं। वास्तविकता है कि राजनीति ने समस्त समाज और संगठनों को ग्रसित कर लिया है। आवश्यकता है कि उस राजनीति को निर्धारित सीमा मे रखा जाय।इससे समाज और संस्कृति

का स्वदेशीकरण संभव है। आर्थिक, सामरिक और कूटनीतिक दृष्टि से वैश्विक परिस्थितियों के अनुरूप होना आवश्यक है किन्तु सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टि से हम दूसरों का उपकार करने मे भी सक्षम हैं।नीरक्षीर विवेक करना पड़ेगा। अतः नैतिकता पर आधारित राजनीति में, अपनी योग्यता और क्षमता के अनुसार, सभी समाज के हितैषियों को सक्रिय होना युग की मांग है।

(21)
दैवी सम्पदा की रक्षा

मनुस्मृति में मानव धर्म और दैवी सम्पदा का मार्ग बताया गया है। इसका निरादर और तिरस्कार करने वाले संस्कृति के द्रोही और निन्दनीय हैं।वे दानवीय मार्ग और आसुरी सम्पदा के प्रचारक एवं उपासक रहे हैं।उनकी वंश-वृद्धि रक्तबीज की तरह भयानक है। चंडिका ही परित्राण करेगी।

(22)
भगवान भरोसे देश

जहां पर बड़े-बड़े लोगों के द्वारा 'झूठइ लेना, झूठइ देना। झूठइ भोजन झूठ चबेना'।। - चरितार्थ हो रहा हो, वहां प्रकृति का प्रकोप होगा ही। भारत मे यह सिद्धांत एकदम स्पष्ट रूप से प्रत्यक्ष हो रहा है। जनता से लेकर माननीय न्यायालय तक यह मानने लगे हैं कि देश भगवान के भरोसे चल रहा है। अब भी, प्रतिज्ञापूर्वक, तीन दिनों तक असत्य और पाखंड छोड़कर, उत्तरदायी शीर्षस्थ लोग मौन रहकर प्रायश्चित करें तो प्रकृति का कोप शान्त हो सकता है। आर्यभूमि बीरान नहीं होगी। इसके रक्षक के हाथ विशाल हैं।

(23)
अहंकार का फल

कोई व्यक्ति अपने को हर विषय का विशेषज्ञ समझने लगे, किसी की सम्मति को आदर न दे, मनमानी बोल कर सबको प्रभावित करने का प्रयास करे, वह अपने क्षेत्र मे अपूरणीय क्षति कर सकता है। उससे सहमत रहने वाले भी लोभी या कायर होते हैं।

सचिव वैद गुरु तीनि,प्रिय बोलहिं भय आस।
राजनीति तन धर्म कर होइ बेगिहीं नास।।

(24)
समयोचित ज्ञान

लोगों को करोना से मरते हुए देखकर गीता का ज्ञान – 'मृत्युः सर्वहरश्चाहम्', याद आया। सारी सम्पत्ति तथा पुत्रादि पर अधिकार, क्षण भर मे मृत्यु छीन ले रही है। किन्तु संस्कार व कर्मों का फल साथ देते हैं। इस लोक मे कीर्ति या अपकीर्ति को भी मृत्यु नहीं छीन पा रही है। इन स्थायी रहनेवाले पदार्थों का संचय करते हुए, निर्भय रहने का प्रयास करना समयोचित ज्ञान है।

(25)
कमल और कीचड़

कमल अपनी सुगंध से आनन्दित करता है, कुछ कहता नहीं है। कीचड़ अपना विस्तार दिखाता है तथा बुदबुदा की आवाज करता रहता है। अच्छा काम करने पर व्यक्ति की प्रशंसा बिना कुछ कहे ही होती है - कमल की तरह। बुरा काम करने पर व्यक्ति कितना भी विस्तार दिखाए, बकवास और आत्मप्रशंसा करे, उसकी निन्दा होती है - कीचड़ की तरह।

प्रथम कोटि के, किसी स्तर के, व्यक्ति को निकट रखना तथा दूसरे कोटि के, किसी स्तर, के लोगों का तिरस्कार करना, उनसे दूरी बनाना, बुद्धिमानी है।

(26)
शासन सत्ता के दान की गति

आज के अखबार मे देखा कि टाटा ग्रुप, जनहित में चार सौ आक्सीजन संयंत्र लगवाने और विदेश से साठ क्रायोजेनिक टैंकर मंगवाने जा रहा है। इससे एक महान उद्योगपति की उदारता के साथ ही उसकी बुद्धिमानी भी सराहनीय है। शासनसत्ता को दिये गये दान का सदुपयोग अनिश्चित है। दान से प्राप्त तथा टैक्स की दर और महंगाई को मनमानी बढ़ाकर एकत्रित राजस्व को दिखावटी और असंगत योजनाओं मे व्यय करके, वोट बैंक बढ़ाने की बात निन्दनीय है। इससे सरकार की विश्वसनीयता समाप्त हो जाती है। अतः, अपनी क्षमता के अनुसार, एक जरूरतमंद व्यक्ति, एक गांव या वृहत क्षेत्र मे, उदारतापूर्वक स्वयं कुछ करना बुद्धिमानी है। वर्तमान राजकीय नियंत्रण के कारण, मंन्दिरों मे दिये

गये दान की भी वही गति है। धार्मिक और उस संम्प्रदाय के सिद्धांतों के अनुसार, जनहित के कार्यों में, इस धन को लगाने के लिए धर्माचार्यों और जनता को भी आवाज उठानी चाहिए।

(27)
संस्कृत की सही दिशा

विद्वानों को संस्कृत भाषा मे व्यख्यान देते हुए सुनकर बड़ा हर्ष होता है। संस्कृत साहित्य और इसमे निहित ज्ञान मे हमारा सहज अनुराग है। विद्वानों का आदर करता हूं। किन्तु, आजकल ऐसा लगता है कि इन विद्वानों से आधुनिक समाज के लिए कोई उपयोगी ज्ञान नहीं मिल रहा है। वे अप्रासंगिक विषयों को प्रकाशित करने, शासन द्वारा सम्मानित होने और परस्पर भावित करने मे ही समय बिता रहे हैं। इस समय वे बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह कर सकते हैं। अब, परम्परागत विषयों के साथ ही विशेष रूप से, सामयिक उपयोगिता के विषयों को पढ़ने व पढ़ाने का महत्वपूर्ण कार्य करना उनके लिए अधिक प्रशंसनीय और समाज के लिए उपयोगी होगा।

संस्कृत की दिशा नई नहीं कल्पित करनी है।अपने प्रचीन ऋषियों,चिन्तकों एवं आचार्यों के आदर्श को नये परिवेश मे प्रचारित करना ही इस ज्ञान का सामयिक उपयोग है।इसके लिए वैदिक एवं ऐतिहासिक ज्ञान मे से राजधर्म, नीतिशास्त्र, तर्कशास्त्र, विभिन्न आख्यान, रामायण व महाभारत के प्रेरक प्रसंग, कौटिल्य आदि अमर कृतिकारों के उपयोगी अंश जैसे विशाल साहित्य को विद्यार्थियों और समाज मे प्रचारित करना ही नई दिशा है। इससे वर्चस्वसम्पन्न विद्यार्थी और नागरिक पैदा होंगे।भय और लोभ छोड़कर, विद्वत्परिषद्, शिक्षक, पुरोहित, संत समाज, धार्मिक-प्रतिष्ठान आदि द्वारा प्रयास करने पर, तिलक, सुभाष चन्द्र, सरदार पटेल आदि देशभक्त, अमर बलिदानी तथा चन्द्रगुप्त, पुष्यमित्र, अग्निमित्र, समुद्रगुप्त, हर्ष जैसे विजेता पुनः आ सकते हैं।

(28)
नैतिक राजनैतिक दल

अपने देश में कुशासन और सामाजिक अव्यवस्था के लिए दो प्रमुख कारक स्पष्ट हैं। प्रधान कारण एससीएसटी व पिछड़ा वर्ग के आधार पर आरक्षण

है। द्वितीय कारण हिन्दू मुसलमान के बीच दूरी को बढ़ाना है। इनका उपयोग वोट के लिए हो रहा है।

पहला कारण सभी दलों के राजनेताओं के लिए असाध्य चर्म रोग हो गया है। स्वतंत्रता के पहले से चली आ रही यह व्याधि, उसी रूप मे अब भी, सब को ग्रस्त किए है।

दूसरा कारण भी बहुत प्राचीन है किन्तु इसका रूप बदलता रहता है। एक तरह के नेता मुसलमानों के संतुष्टीकरण से, तो दूसरे तरह के लोग उनको असंतुष्ट और उद्वेलित करके मुसलमान और हिन्दू के वोट का ध्रुवीकरण करने मे लगे हैं। दोनों कुष्टग्रस्त हैं। देश की अपेक्षा सत्ता ही सबको प्रियतर है। सभी अविश्वसनीय हैं।

इस समय समता, न्याय व सामाजिक समरसता के आधार, पर वास्तविक स्वतंत्रता की व्यवस्था करने वाले चिन्तकों व युवकों का एक नया दल बनाना आवश्यक है। एक नैति राजनैति संगठन इसी दिशा में एक प्रयास है।

(29)
सवर्णों का संगठन

भारत मे मध्यम-वर्ग, जिसमें अधिकांश, तथाकथित सवर्ण भी हैं, का वोट असंगठित है। अतः, वे स्वयं उपेक्षित और शोषण के शिकार होगए हैं। वे अधिकतर, पढ़ें लिखे और जानकार हैं। जब उनके वोट का महत्व हो जायेगा, तो यहाँ वास्तविक लोकतंत्र स्थापित होगा। शोषण के विरुद्ध उन्हें संगठित करना एक बड़ा काम है। यह काम झूठे प्रचार से नहीं, नैतिकता के बल पर संभव होगा। सवर्णों के संगठन से असवर्ण या किसी संप्रदाय को क्षति नहीं होगी क्योंकि वे सांस्कृतिक, सामाजिक और मानवीय मूल्यों को समझ सकते हैं।

(30)
कुछ विचारणीय संदेश

व्यक्तिगत जीवन बीज है, सार्वजनिक जीवन उसी बीज का वृक्ष है।

व्यक्तिग़त आचार- व्यवहार जैसा हो उससे भिन्न सार्वजनिक आचरण दिखाई पड़े, तो समझ लेना चाहिए कि वह व्यक्ति पाखंडी और धूर्त है। 'फरइ कि कोदों बालि सुशाली। मक्ता प्रसव कि संबुक ताली।।' -तुलसी दास।

व्यक्तिगत जीवनी की बात सार्वजनिक जीवन मे न की जाय, यह कहनेवाले धूर्त्त ही हैं और अपने दोषों को प्रच्छन्न रखना चाहते हैं।

व्यक्तिगत जीवन में, किसी विशेष कारण से गलती करके पश्चाताप करने पर व्यक्ति दोषमुक्त हो सकता है किन्तु दीर्घकाल तक वही कुकर्म करनेवाला सार्वजनिक रूप से निन्दनीय और त्याज्य है। उसका सार्वजनिक विरोध उचित है।

व्यक्तिगत जीवन मे निन्दनीय होने पर, सार्वजनिक/सामाजिक क्षेत्र मे बड़ा से बड़ा काम करनेवाला भी, वास्तव मे, हेय है क्योंकि उसके काम का दूरगामी परिणाम देश और मानवता के लिए अहितकर ही होता है।

इन कसौटियों पर ही तथाकथित महापुरुषों की वास्तविकता परखना उचित है।

(31)
लोक और परलोक

व्यक्ति जैसी लोकसाधना करता है, परलोक भी वैसा ही बनता है। दोनों मे भेद समझना अज्ञान है। जीवन की तात्कालिक सफलता के प्रलोभन मे वास्तविक उद्देश्य भूल जाता है और कष्ट बढ़ता है। लोक का उद्देश्य ज्ञान प्राप्ति है,इसी से परलोक भी स्वयं सिद्ध हो जाता है। उपनिषद का मंत्र बताता है - *इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति नो चेदवेदीन्महती विनष्टिः।* इसी का अर्थ ऊपर लिखा है।

चार आश्रमों को बतानेवाली भारतीय संस्कृति धन्य है। कालिदास ने चारों आश्रमों का प्रयोजन बताया है -*शैशवेभ्यस्त विद्यानां, यौवने विषयैषिणाम्। वार्धक्ये मुनिवृत्तीनां, योगेनान्ते तनुत्यजाम्।।* -रघुवंश।। विद्यार्जन, कामनापूर्ति, तपस्या तथा सन्यास, चारों के मूल मे ज्ञानार्जन है। इसी से लोक और परलोक दोनों एकसाथ साथ सिद्ध हो जाते हैं।

(32)
त्रिदण्डी

शारीरक ,वाणीजन्य तथा मानसिक तीन प्रकार की शक्तियों से व्यक्ति दूसरों को दण्डित करता है तथा इन्हीं तीनो प्रकार की शक्तियों के प्रयोग के द्वारा, दूसरा भी उसे दण्डित करता है। यह कष्ट ही त्रिदण्ड कहा जाता है जिसे देने और पाने मे सामान्य व्यक्ति व्यग्र रहता है।

दूसरे को किसी भी प्रकार का दण्ड न देनेवाला और दूसरे द्वारा दिये गये दण्ड को सहन करनेवाला, क्षमा कर देने वाला त्रिदण्डी कहा जाता है। सर्वेषु भूतेषु निधाय दण्डम् - यह व्रत लेकर आत्मान्वेषण करने वाला सन्यासी, प्रतीक रूप मे त्रिदण्ड धारण करता है। संकल्प का विस्मरण न हो सके, इस उद्देश्य से भी प्रतीक धारण किया जाता है।

इस समय त्रिदण्ड, गैरिक वस्त्र, जटाधारी या मुण्डित शिर, मौन या उपदेश, आसन-प्राणायाम, महन्थी और बड़े आश्रम, विदेशों में प्रचार आदि अधिकतर व्यवसाय के माध्यम हैं।

सन्त, महात्मा, सन्यासी, साधु, स्वामी जी आदि सभी उपाधियों की वास्तविकता का ज्ञान त्रिदण्डी के उक्त लक्षण के आधार पर हो सकता है। निर्धन रहकर केवल ज्ञान, इन्द्रिय-निग्रह यानी वैराग्य ही आध्यात्मिक साधक या महात्मा होने के निकष (परीक्षण के साधन) हैं।

(33)
माता-पिता का उत्तरदायित्व

बालक को प्राथमिक आचार का ज्ञान और आस्तिक बुद्धि की शिक्षा न देनेवाले माता पिता का अग्निकर्म न हो, प्रवाहित कर दिये जायें, पिण्ड तथा जल न दिया जाय, तो इसके लिए वे स्वयं जिम्मेदार हैं। धर्मग्रंथ तथा लोक दोनों की मर्यादा को केवल हिन्दू छोड़ता जा रहा है, अन्य सभी सम्प्रदाय उसको दृढ़तापूर्वक पकड़े हैं।

इस दुर्दशा का कारण हमारे देश की शासन-व्यवस्था है। सामाजिक जागरण तथा शासन-व्यवस्था में परिवर्तन करना अनिवार्य हो गया है। माता-पिता अपने बालक की गृह-शिक्षा पर स्वयं समय देने लगें तो सुधार सहज प्रयास से संभव है।

(34)
अमरत्व की दुराशा, सत्य से आशा

रामचरित मानस में राजा भानु प्रताप की आख्यायिका है। अत्यंत अहंकार में राजा इसी पृथ्वी पर अमर होने तक की महत्त्वाकांक्षा कर बैठे। परिणामतः, उनका नाश हो गया। अति सर्वत्र वर्जयेत।

व्यवहार हो या राजनीति, सर्वत्र के लिए सत्य की ही अतिसृष्टि धर्म के रूप में, विधाता ने किया है। इसी सत्य रूपी धर्म से दुर्वल भी प्रबल को पराजित कर देता है। थोड़े समय के लिए, अपने से बड़ों को ढकेल कर, ऊंची कुर्सी लेलेना तथा राजा, मंत्री, न्यायाधीश, सेनापति, धर्माधिकारी आदि सभी के अधिकारों का उपभोग करना, अति का द्योतक और प्रकृति के लिए भी असह्य अत्याचार है। ऐसा व्यक्ति अपने सहयोगियों के साथ, सर्वनाश के साथ, इतिहास मे निन्दनीय रूप मे उदाहृत होता है।

प्रबल अत्याचारी को समाप्त करने के लिए सत्य का आश्रय कल्याणकारी है। इसी के भरोसे बैठे रहने से नहीं, प्रयास से संकट समाप्त होता है। *नाश्रान्तस्य सख्याय देवाः* - अर्थात सत्य के मार्ग पर चलते हुए थक जाने पर देवता सहायक होते हैं।

(35)
योग दिवस

योग के विषय मे विचार आरंभ करने पर सर्वप्रथम यम और उसके प्रथम अंग - सत्य की साधना की अनिवार्यता ही समझ मे आती है। केवल सत्य की साधना से प्रत्येक तरह के योग सिद्ध हो सकते हैं। इस आधार की उपेक्षा करके, केवल आसन और प्राणायाम, जिनसे शक्ति मिलती है, को योग मानने और प्रचारित करने वाले निश्चित रूप से अपनी शक्ति का दुरुपयोग कर रहे हैं क्योंकि उनमें सत्य का सर्वथा अभाव है। उनसे समाज और देश का अहित अवश्यंभावी है। वह विश्व मे भारतीय योग का नहीं वल्कि अपना प्रचार करते हैं।

योग के आठ अंग हैं। पांच बहिरंग तथा तीन अन्तरंग हैं। इनमें से, आसन प्राणप्रयाण के पहले यमनियम की साधना आवश्यक है। यह नीव हैं। दृढ़ नीव बनाने के बाद महल खड़ा किया जाता है, अन्यथा दुर्घटना होती है। अतः अगले इक्कीस जून को यम-नियम और विशेषरूप से सत्य के प्रति निष्ठा उत्पन्न करना सार्थक प्रयास होगा।

(36)
ईश्वरीय व्यवस्था में विश्वास

राजनैतिक, सामाजिक, पारिवारिक या व्यक्तिगत, किसी तरह का अपराध, अनाचार या अनीति करने वाले ईश्वर, पुनर्जन्म और कर्मवाद मे विश्वास नहीं रखते हैं।वे ही निराश होते हैं, आत्महत्या तक कर बैठते हैं तथा दुराचारी होते हैं।। विश्वास रखनेवाले अदृश्य कारण से सहायता पाने की आशा मे निराश कभी नहीं होते हैं तथा कुकर्म से विरत रहतें हैं।

(37)
राममन्दिर पर नया विवाद

राम के जन्मभूमि के लिए सन्त और साधु समाज ने पांच सौ वर्ष संघर्ष किया। कभी दूसरे सम्प्रदाय से तो कभी शासन-सत्ता से लड़ते हुये, सहस्त्रों हिन्दुओं ने अपना बलिदान दिया। अन्तिम चरण में, सन्तों द्वारा की गई याचिका पर, उच्चतम न्यायालय द्वारा विवाद की समाप्ति हुई। किन्तु हिन्दू समाज एवं देश का दुर्भाग्य नहीं समाप्त हुआ। गन्दी राजनीति के प्रवेश से नया विवाद आरंभ हो गया।

राममंदिर एक आस्था का विषय है। इसके द्वारा राजनैतिक लाभ लेने के प्रयास से हिन्दुओं मे पक्ष-विपक्ष तैयार हो गए। पुनः विवाद आरंभ हो गया। इससे हिन्दू वोट का ध्रुवीकरण भले हो जाय किन्तु हिन्दू-संगठन तथा धार्मिक आस्था को क्षति पहुंची है।

मन्दिर के लिए भूमि न्यायालय के आदेश से हिन्दुओं को मिली है। शासन सत्ता ने न्यायालय को प्रभावित किया, ऐसा मानने पर न्यायालय तथा शासन, दोनों की मानहानि होगी। इस याचिका मे सत्ता किसी पक्ष मे नहीं थी। अतः, किसी राजनैतिक दल द्वारा मन्दिर बनवाने का श्रेय लेना, बड़े-बड़े धर्माचार्यों तथा जिन वृद्ध नेताओं ने संगठन बनाकर अयोध्या मे आन्दोलन किया उन्हें अपमानित करते हुए, उनकी जगह किसी पदस्थ राजनेता द्वारा भूमि-पूजन करना सर्वथा निन्दनीय कार्य है। अन्य योग्यता की बात छोड़ने पर भी, इतना सभी जानते हैं कि विवाहित गृहस्थ को सपत्नीक और पारंपरिक वस्त्राभूषण के साथ देवकार्य करना चाहिए। कर्मकांड की सर्वथा अवहेलना करना अनिष्टकारी हो सकता है।

धार्मिक आस्था की रक्षा एवं देश मे विवादों को समाप्त करने के लिए राम-मन्दिर को राजनीति से मुक्त रखना आवश्यक है। धर्माचार्यो के द्वारा मन्दिर का निर्माण, प्राण-प्रतिष्ठा तथा पूजन आदि सर्वमान्य तरीकों से करने पर मन्दिर निर्विवाद, पवित्र एवं आस्था का सर्वमान्य केन्द्र बना रहेगा।

(38)
सत्य भाषण

भारत मे कई प्रकार के योग प्रचलित हैं। अधिकांश योग आर्ष ग्रन्थों पर आधारित हैं। सभी योगों मे आचार और यमनियम की शिक्षा सर्वप्रथम दी गई है। इन सब मे भी 'सत्यं वद'-पहली शिक्षा है। यहां सत्य के विषय मे कुछ प्रस्तुत है।

अपने को जैसा ज्ञात है तथा जो अपना निश्चय और कर्म है, उसे वाणी और कर्म से, यथावत, दूसरे को अवगत कराना सत्य की प्रचलित परिभाषा है।सत्य का प्रयोग बड़ा जटिल है। कभी कभी सत्य ही असत्य का और असत्य लगनेवाला सत्य का फल देता है। अतः भावना को सत्य का साधक बताया गया है। मन और बुद्धि के संयोग से भावना बनती है। इस तरह शुद्ध अन्तःकरण ही सत्य का जनक है।

सत्य बोलने से धर्म की हानि होने की संभावना है तो क्या करना चाहिए, इस विषय मे महाभारत के शान्ति पर्व मे निर्णय दिया है -

अकूजनेन चेन्मोक्षः नावकूजेत्कथञ्चन्
अवश्यं कूजितव्ये वा शंकेरन्वा अकूजनात्
श्रेयस्तत्रानृतं वक्तुं सत्यादिति विचारितम्।।

अर्थात, विषम परिस्थिति में न बोलने से काम चल जाय तो मौन रह जाना चाहिए। यदि बोलना आवश्यक है या न बोलने से शंका उत्पन्न हो रही है तो उस समय सत्य की जगह असत्य ही बोल देना चाहिए। यह सुविचारित और कल्याणकारी निर्णय है।

(39)
लोकनीति की संतान

लोकनीति ने राजनीति को उत्पन्न किया है। समाज ने ही राजा की कल्पना किया तथा उसको नियंत्रित रखने के नियम पैदा किया जिसे राजधर्म के नाम से जाना जाता है। राजनीति, राजधर्म का एक स्वरूप है जो मूलरूप को सुरक्षित रखने के लिए प्रयोग में आती है। यह आदर्श स्थिति है।

जब राजनीति विकृत होती है तो कंस अपने पिता उग्रसेन को, औरंगजेब अपने पिता शाहजहां को बन्दी बनाकर, राजधर्म का त्याग करके, अनैतिक प्रकार से शासन करने लगते हैं। अब भी वृद्धों का अनादर करके, सत्तारूढ़ होने के उदाहरण दिखाई पड़ रहे हैं। वर्तमान समस्याओं का कारण लोकनीति और राजधर्म दोनों की अवमानना करना है। पुत्र ही पिता का शत्रु बन रहा है। राजनीति का जनक समाज अशक्त हो गया है।

ऐसी स्थिति मे लोकनीति की प्रतिष्ठा पुनः करनी पड़ेगी। इस कार्य को करने के लिए राजनीति को राजधर्म से नियंत्रित करना आवश्यक है। इस समय, समाज-सेवकों, विचारकों और प्रबुद्ध लोगों का कर्तव्य है कि वे राजनीति में कंटक शोधन के लिए, उसमें हस्तक्षेप करें। यह राजनीति की नहीं, लोकनीति और समाज की सेवा होगी।

(40)
अंधेर नगरी

अन्याय, अशांति, आतंक, भ्रष्टाचार, महंगाई आदि से त्रस्त जनजीवन की वास्तविक स्थिति को छिपाकर, उसमें रामराज्य का अमन चैन प्रदर्शित कर देना, प्रचार तंत्र की बाजीगरी से ही संभव है।यही अंधेर नगरी का स्वरूप है, जिसमे सत्य बोलने या नीति की बात करने पर, पूर्व जन्म के अपराध का भी दण्ड दिया जा सकता है। यह आदमी का किया हुआ करिश्मा है जिसका विरोध होना चाहिए।

आदमी कोई परम स्वतंत्र नहीं है। मनुष्य का आचरण ईश्वरीय व्यवस्था से शासित होता है। अनैतिक आचरण को जीविका का साधन मान्य करनेवाले तथा अन्याय पर मौन रहनेवाले समाज को दण्ड देने के लिए उसका शासक भी

तदनुसार देना ईश्वरीय व्यवस्था है। फांसी की सजा देने के लिए जल्लाद नियुक्त होता है। बुरा काम बुरा आदमी ही कर सकता है। अंधेर नगरी का राजा स्वयं गले में फंदा डाल लेता है।

अंधेरे नगरी से मुक्ति पाने के लिए आचरण को सुधारना तथा ईश्वरीय व्यवस्था मे विश्वास रखते हुए निर्भय होकर व्यवहार करना श्रेयस्कर है। दूसरों को भी सन्मार्ग पर आरूढ़ होने के लिए प्रेरित करना समाज की सेवा होगी।

(41)
नया स्वतंत्रता संग्राम

संग्राम के कारण अनेक प्रकार के होते हैं। धर्म की स्थापना,स्वतंत्रता, भूमि/धनार्जन, सत्तासुख/वर्चस्व, स्त्री और विश्व मे ख्याति, यह युद्ध के प्रमुख कारण हैं। धर्मयुद्ध ही संग्राम करने के लिए शास्त्रानुमोदित है। स्वतंत्रता संग्राम भी धर्मयुद्ध ही था। उसमें देश-प्रेम की भावना प्रधान थी। उसमें आत्माहुति देने वाले अमर हो गए। उनके बलिदान से उत्पन्न स्वतंत्रता का दुरुपयोग करने वाले, अंग्रेजों के कृपापात्र, अधम कोटि के प्रभावशाली लोग, स्वतंत्रता के पहले से ही, सत्तासंग्राम मे लिप्त हो गए और उनकी बनाई पृष्ठभूमि मे अब भी लोग देश को बरबाद कर रहे हैं। कोई जातिवाद को, कोई पाश्चात्य संस्कृति को तो कोई संकीर्ण राष्ट्रवाद और मनमानी प्रचार को अस्त्र बनाकर, विकास के नाम पर, सत्तासुख की व्यवस्था में लगा है। देशहित और स्वतंत्रता के उद्देश्य उपेक्षित हैं। देश-प्रेम का स्थान सत्ताप्रेम ने ले लिया है।

ऐसी स्थिति से मुक्ति पाने के लिए, पुनः स्वतंत्रता संग्राम आरंभ करना आवश्यक हो गया है। यह कार्य, संवैधानिक तरीके से नया संगठन बनाकर भी हो सकता है। इसमें स्वार्थ का त्याग करने वाले विचारकों और नवयुवकों की भूमिका आहूत है।

(42)
सहायता के प्रकार

नौजवानों को कामचोरी व मुफ्तखोरी सिखाने वाली मनरेगा और 15 किलो गेहूँ बांटने की योजनाएं देश का भविष्य बिगाड़ रही हैं। मनरेगा का मजदूर, सामान्य श्रमिक का चौथाई काम भी नहीं करता है। यह काम वोट की व्यवस्था के

लिए हो रहा है। विकलांगता नहीं हो तो, पूरा काम लेकर मजदूरी देना उचित है। दो महापुरुषों के व्यवहार से सहायता देने की विधि जानना चाहिए।

प्रथम- सन 1905 में, बंगाल के अकाल के समय प्रसिद्ध उद्यमी, समाजसेवी और गीता प्रेस के संस्थापक श्री जय दयाल गोयनका लोगों से कीर्तन करवाकर, चावल देते थे। लोगों को हितकर काम में व्यस्त रखने की व्यवस्था किया था। यह एक आदर्श है।

द्वितीय वाराणसी के प्रसिद्ध वैद्य, पंडित यदुनंदन उपाध्याय के पिता, एक अकाल के समय, अपने घर की मजबूत चहारदीवारी को गिरवाकर, पुनः वैसी ही बनवाया और लोगों को मजदूरी देकर, उनके भोजन की व्यवस्था किया। न एहसान किया, न ही लिया। सहायता का यह तरीका भविष्य के लिए भी उदाहरण है।

वर्तमान में सत्ता की व्यवस्था को छोड़कर, सभी राजनैतिक दलों को, देश का भविष्य देखना उचित होगा। ऐसे राजनैतिक संगठन को वरीयता देना, देश सेवा है।

(43)
वृद्धावस्था और वैराग्य

आवास के जीर्ण-शीर्ण हो जाने पर, बुद्धिमान व्यक्ति उससे लगाव छोड़कर,नये स्थान की व्यवस्था करता है। इसी तरह, शरीर और इन्द्रियों के अशक्त होने पर, उनसे आसक्ति छोड़ कर, वैराग्य का सेवन करना विवेक बुद्धि है। जो छोड़ने के लिए उद्यत हो उसका त्याग कर देना हितकर है। वृद्धावस्था में वैराग्य अधिक संभव है। वैराग्य से ही ज्ञान दृढ़भूमि को प्राप्त करता है। बाल्यकाल से ही श्रवण द्वारा ज्ञान मिलता है, बाद में मनन द्वारा शंकाओं का समाधान होता है और वृद्धावस्था में, वैराग्य की सहायता से, ज्ञान पर आरूढ़ (निदिध्यस्त) हो सकते हैं। इसके लिए वृद्धावस्था की कामना करनी चाहिए। वास्तविक साधक के लिए, पहले जो शत्रु अपराजेय लगते थे, वे वैराग्य उत्पन्न होने पर, सहज ही समाप्त हो जाते हैं।

इसीलिए यजुर्वेद में दीर्घायु की कामना है – ''दीर्घायुत्वं च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्।।''

(44)
प्रकृति का नियम

पतझड़ के बाद वसन्त आता ही है। यह प्रकृति का नियम है। मानव व्यवहार भी सत्य और असत्य से मिश्रित रूप मे प्रकृति के नियम से प्रभावित रहता है। असत्य का घोर अंधकार देखते हुये भी सत्य को पूर्ण विश्वास रहता है कि - ऐहै कबहु बसन्त ऋतु। असत्य का साक्षी और उसका प्रकाशक सत्य ही होता है। पेड़ स्थिर रहता है, पत्तियाँ आती जाती रहती हैं। सत्यधर्म का आधार धैर्य है।

(45)
विश्वसनीयता

व्यक्तित्व का महत्तम उत्कर्ष विश्वसनीयता है। इसका आधार सत्य है।राणा प्रताप को भामाशाह की तरह, विश्वसनीय व्यक्ति को ऐसे सहायक मिल जाते हैं जो आजीवन साथ देते हैं।

धूर्त का साथ देने के लिए भी भीड़ उमड़ती देखी जाती है क्योंकि स्वार्थी लोगों को विश्वास होता है कि इस धूर्त का तिकड़म सिद्ध होने पर मुझे भी लाभ होगा। डूबती नाव से कौआ की तरह, मुसीबत में, उसके साथी भाग जाते हैं। तब, धूर्त राजनीतिज्ञों द्वारा पाले गए पूंजीपति भी मुख मोड़ लेते है, निराश करते हैं। अतः विश्वसनीय बनना श्रेयस्कर है।

(46)
सत्य के तीन स्वरूप

सत्य का उलटा या विरोधी असत्य है। 'सत्यान्नास्ति परो धर्मः' - सत्य से बड़ा कोई धर्म नहीं है, ऐसा जान लेने पर, यह ज्ञात हो जाता है कि असत्य से बड़ा अधर्म नहीं है। असत्य के विषय में विशेष कहना अनावश्यक है। सत्य रक्षक है तो असत्य भक्षक है। अतः तुलसीदास ने कहा है - *नहिं असत्य सम पातक पुंजा। गिरि सम होहिं कि कोटिक गुंजा।।* सत्य के स्वरूप को जानने और आचरण में लाने पर, जीवन सार्थक होता है। मानसिक, वाचिक और कायिक के रूप में, सत्य के तीन स्वरूप निम्नलिखित हैं।

जिस विषय के चिंतन का समर्थन बुद्धि भी करे, सात्विक भाव उत्पन्न हों तथा उनके द्वारा प्रसन्नता मिले वह मानसिक सत्य है। अन्तःकरण में जो भाव या तथ्य उपस्थित हो, उसे यथावत कहना वाचिक सत्य है। अन्तःकरण से समर्थित तथा वाणी से कहने के अनुसार ही कार्य करना कायिक सत्य है। मनसावाचाकर्मणा तीनों स्वरूपों के सत्य का सम्मिलित परिणाम स्वधर्म का पालन, लोकोपकार, सुयश तथा सत्वशुद्धि है। सत्य ही धर्म है। *धर्मादर्थश्चकामश्च स धर्मः किं न सेव्यते* - महाभारत, शान्तिपर्व।

(47)

किसान आन्दोलन

इस समय चल रहा किसान आन्दोलन सत्तापक्ष को संत्रस्त कर रहा है। जनतंत्र में, राजहठ से इसकी अनदेखी करना देश के लिए घातक है। किसान का साथ देने वाले चाहे जो भी हों, किन्हीं दलों के कार्यकर्ता ही हों, आन्दोलन के समर्थक माने जायेंगे। किसान और बाहरी व्यक्ति में भेद कहकर आन्दोलन को छोटा नहीं किया जा सकता है। इतने बड़े आन्दोलन का आठ महीनों से चलाते रहना, ध्यानाकर्षण का महत्वपूर्ण केंद्र बन गया है। सत्तापक्ष को, शीर्षतम स्तर से, इस पर बात करनी चाहिए।

(48)

पृष्ठभूमि और योजना

श्री भुवनेश्वरी विद्या प्रतिष्ठान के नाम से, भुवनेश्वरीपीठ, बिहसड़ा, मिर्जापुर, उत्तर प्रदेश के पते पर, एक सामाजिक, सांस्कृतिक एवं शैक्षणिक संस्था का पंजीकरण वर्ष 1981-82 मे कराया गया है। इसके अन्तर्गत विभिन्न कार्यक्रमों के साथ, बालिका विद्यालय, संस्कृत महाविद्यालय, पुस्तकालय, त्रैमासिक पत्रिका का प्रकाशन, गोशाला तथा आकर्षक मंदिर की स्थापना हुईं। संस्कार, नैतिकता, धर्माचरण आदि के लिए, नैतिक सामाजिक संगठन के नाम से एक विशेष शाखा का सृजन किया गया है। काशी व प्रयाग के मूर्धन्य विद्वानों के अलावा दूर से बुलाए गए विचारकों के बीच, विभिन्न विषयों पर, अब तक में, लगभग दो सौ सभायें की गई हैं। उपयोगी साहित्य का सृजन एवं प्रकाशन भी किया गया। इन सब कार्यक्रमों का अपेक्षित प्रभाव नहीं देखा जा रहा है। धनाभाव है, किन्तु मुख्य

समस्याएं समाज मे व्याप्त नैराश्य, उदासीनता तथा सर्वत्र व्याप्त राजनैतिक हस्तक्षेप और भ्रष्टाचार हैं। संस्था को सहायता देने को राजी होने वालों की शर्तें हमें स्वीकार नही क्योंकि उससे बेइमानी और भ्रष्टाचार को बढ़ावा मिलेगा। चालीस वर्षों के अनुभव के आधार पर, निश्चय होता है कि सामाजिक संस्थाओं को विश्वसनीय और समाज को सशक्त बनाने के लिये, पुराने कार्यक्रम को यथावत चलाते हुए, इससे एकदम अलग, नया संगठन बनाना आवश्यक है। इसका प्रारूप नीचे है।

एक नैतिक राजनैतिक संगठन, (जो सत्यनिष्ठा, संस्कृति, स्वाभिमान, तथा भारतीय राजधर्म के आदर्शों पर आधारित होगा) का पंजीकरण कराने का प्रयास आरंभ किया गया है। संविधान बनाया गया है। सदस्य बनाने और विभिन्न औपचारिकताओं को पूरा करने मे महामारी भी एक बाधा है। मन्द गति से कार्य हो रहा है। उत्साही साथियों के सम्मिलित होने पर कार्य शीघ्र होगा। इस पृष्ठ के माध्यम से इस राजनैतिक संगठन के विषय में अवगत कराते रहेंगे। नैतिक सामाजिक संगठन को चलाने के इच्छुक समाजसेवियों तथा उत्साही व्यक्तियों की इस संगठन मे विशेष उपयोगिता होगी। सदस्य व समर्थक के रूप में सभी का स्वागत होगा।

(49)
नियतिवाद और संकल्प

गीता के विभिन्न अध्यायों से कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग की शिक्षा मिलती है। योग का अर्थ है निश्चयपूर्वक साधना। नियतिवाद को स्वीकार करने पर, व्यक्ति द्वारा कोई निश्चय संभव नहीं है। अतः यह सिद्धांत गीता में उपदिष्ट मुख्य अंश कर्मयोग से बे-मेल लगता है। किन्तु गीता के अठारहवें अध्याय में, ग्रंथ के उपसंहार के रूप में, एकमात्र नियति को ही नियामक माना गया है। द्रष्टव्य- स्वभावजेन कौन्तेय निबद्धः स्वेन कर्मणा। कर्तुं नेच्छसि यन्मोहात करिष्यस्यवशोपि तत्। पुनः - *ईश्वरःसर्वऽभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति। भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढधानि मायया।।* इस तरह ईश्वरेच्छा ही नियति है। किन्तु, यह समझना ठीक नहीं है। ईश्वर को अपने कर्म से भिन्न, निरंकुश मानने पर, ऐसा लगता है। कर्मवाद के सिद्धांत का नियामक ईश्वर को मानने पर, कर्मयोग ही प्रतिष्ठित रहेगा।

(50)
मामेकं शरणं ब्रज

गीता का उपसंहार करते समय लिखा है – *सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं ब्रज।* इसका सीधा अर्थ लेने पर लगता है कि गीता में भक्तिमार्ग (प्रतिपत्ति) ही प्रतिपाद्य है, अन्य सभी कर्म धर्म त्याज्य हैं। किन्तु ऐसा अर्थ असंगत है। कर्ममार्ग और ज्ञानमार्ग दो ही वेद में विहित हैं, ऐसा गीता में पहले ही लिखा है। भक्ति भी कर्म का एक सहायक योग है। ईश्वरार्पण से कर्मयोग की सिद्धि सहज हो जाती है। कर्म, भक्ति और ज्ञान तीनों की समन्वित साधना से परम श्रेय की प्राप्ति होती है, गीता में यही प्रतिपादित है। कर्मयोग को गीता में अनिवार्य साधना कहा है।

नियत कर्म (स्वधर्म) का त्याग करने से पतन होता है। इसके त्याग की बात गीता में नहीं हो सकती है। कुछ लोग छोड़ भी देते हैं। नियत (भाग्य), प्रारब्ध का उल्लंघन कठिन है। इसे त्याग करने का उपदेश गीता में नहीं हो सकता है, क्योंकि असंभव है।

उपर्युक्त के परिप्रेक्ष्य में सर्वधर्मांन् परित्यज्य का अर्थ है कि स्वधर्म का आचरण करके, उसके फल के लिए कोई अन्य उपाय न करें। स्वधर्म को भी ईश्वरार्पित कर देने पर हर तरह के पाप से मुक्ति मिल जाती है। ऐसा अर्थ समझने पर ही गीता का मुख्य प्रतिपाद्य कर्मयोग सिद्ध होता है।

(51)
व्यंग्य और मन की बात

आखिर अच्छे दिन आ गये न! यह वाक्य विपक्ष के द्वारा कहे जाने पर व्यंग है और सत्तापक्ष से कहे जाने पर मन की बात हो जाती है। व्यंग भी मन की ही बात है। सत्य से परे सारी बातें व्यंग, उपहास, मनोरंजन मात्र हैं। विपक्ष व्यंजना का तथा सत्तापक्ष अभिधा का प्रयोग करके एक ही बात कह रहे हैं। आवश्यकता है दोनों पक्ष स्पष्टतः सत्य बोलने का साहस करें।।

(52)
तब और अब

वाल्मीकि ने लिखा है कि राम को बनवास का आदेश देने पर प्रजा ने निर्भय होकर विरोध किया और दशरथ के सामने - *धिक् त्वां दशरथम्* भी कहा।

राजा को सहना पड़ा। उस समय राजतंत्र मे प्रजातंत्र था।

अब, आन्दोलन करने वाले किसान को खालिस्तानी और देशद्रोही घोषित करना, कराधान, महंगाई, भ्रष्टाचार आदि से पीड़ित मध्यम वर्ग तथा योग्य व्यक्ति की उपेक्षा करना आदि प्रजातंत्र मे निरंकुश तंत्र साबित हो रहा है। संविधान से समानता तथा कानून से स्वतंत्रता के अधिकार बाधित हैं। प्रजातंत्र का उपहास भारत में स्पष्ट है। स्वतंत्रता के समय से ही दिनों-दिन राजनीति विकृत हो रही है।

इस समय पाखण्ड-तंत्र है जिसमे सर्वत्र असत्य व्याप्त है। यह सत्ता 15 किलो गेहूँ पर बिकने वाली गरीब और मूर्ख जनता, भेदकारी अनैतिक कानून, पूंजीपतियों के धन, प्रचारतंत्र, सम्प्रदायवाद, जातिवाद और बाहुबल पर चल रही है। इसको हटाकर भारतीय जनतंत्र की व्यवस्था करना आवश्यक है।

(53)
तात्पर्य का निर्णय

किसी ग्रंथ के एक अंश का तात्पर्य समझने के लिये मीमांसा शास्त्र मे निम्नलिखित सिद्धांत लिखा है-- *उपक्रमोपसंहारावभ्यासोऽपूर्वता फलम्। अर्थवादोपपत्ती च लिङ्गं तात्पर्यनिर्णये।।*

यह सिद्धांत वेदांत में भी मान्य है। इसका अर्थ है कि ग्रंथ का आरंभ, उपसंहार, बार-बार कही बात, फल की विशिष्टता, प्रशंसा के वाक्य और उसी में दिया गया निर्णय, यह छः बातें तात्पर्य निर्णय के लिए साधन हैं। इस सिद्धांत का प्रयोग करने पर किसी शास्त्र का सही अभिप्राय समझ सकते हैं ।

एक अंश को आधार बनाकर, किसी शास्त्र को स्वेच्छा का समर्थक बनाना पाखंड है। ऐसे लोगों का हित सम्पूर्ण ग्रंथ को पढ़ने और समझने मे है। इसीलिए विद्वानों का महत्व है।

(54)
आकलन का आधार

किसी का समर्थन करते समय परिवार, देश, समाज, संस्कृति, न्याय, सत्य, मानवता आदि के विषय में उसका उदार आचरण ही आधार बनाना उचित है। इन गुणों के अभाव मे विद्वत्ता का प्रदर्शन, शारीरिक सामर्थ्य, चौबीस घंटे

काम करने की क्षमता, वाक्चातुर्य, कूटनीति, संगठन की सामर्थ्य आदि में निपुण होने पर वही व्यक्ति विनाशकारी सिद्ध हो सकता है। करिश्मा से प्रभावित नहीं होना चाहिए। *'जरहिं पतंग विमोहवस, भार सहहिं खर बृन्द। इन्हहिं न शूर सराहिये, समुझि देखु मतिमंद।।'* क्षमता भी मापदंड नहीं है। मानसिंह राणा प्रताप की तरह पराक्रमी था किन्तु उसका शूरत्व ही कुलघाती हो गया। भारत के अधिकांश नागरिकों में सही आकलन की क्षमता नहीं है। उन्हें बेवकूफ बनाना आसान है। गुलामी की मानसिकता अब भी है। ऐसे लोग सहजरूप से मूर्ख हैं।

सहस्त्र मूर्खों की प्रशंसा की अपेक्षा एक समझदार आदमी का विरोध अधिक वजनदार है। समर्थकों या विरोधियों की संख्या से नहीं, उनकी योग्यता के आधार पर लोकमत का निर्णय होना चाहिए। इसके लिये शिक्षा मे संस्कार, सत्य, त्याग, नैतिकता, स्वाभिमान आदि आधारभूत गुणों का पाठन आवश्यक है। तभी योग्यता का सही आकलन होगा।

(55)
यज्ञ और व्यवहार

देवता की प्रसन्नता के लिए धन, श्रद्धा, स्तुति तथा आहुति देना मुख्य यज्ञ है। प्रसन्न होकर देवता मनोकामना पूर्ण करते हैं।यज्ञ के विषय मे ब्रह्मा का आदेश है- देवान्भावयतानेन ते देवा भावयन्तु नः -गीता। बिना दिये देवता नहीं देते हैं। आदान प्रदान परस्पर होता है। बिना कुछ दिये ही देने वाला प्रेत होता है जो बदले मे सर्वस्व छीन लेता है। इसलिए प्रेत आदि योनियों से उपकार लेना वर्जित है।

यज्ञ का लौकिक स्वरुप व्यवहार है। इसमें दूसरे से कुछ लेने और देने का सम्बन्ध बनता है। बिना दिए उपकार स्वीकार करना परिग्रह है जो वर्जित है। यहाँ भी बिना कुछ दिये ही देने वाले मिल जाते हैं। वे धूर्त होते हैं जो बदले में बेशकीमती वस्तु ले लेते हैं। अपनी इज्जत, अपना मताधिकार, अपनी स्वतंत्रता आदि सुरक्षित रखने के लिए किसी धूर्त व्यक्ति या सरकार से भी मुफ्त में कुछ नहीं लेना चाहिए। आपत्तिग्रस्त होने पर भी अपने व्यक्तित्व की पहचान सुरक्षित रखना ही व्यवहार में कुशलता है। मनस्वी मृयते कामं कार्पण्यं नहिं गच्छति।।

(56)
विषबेलि

इस देश मे आरक्षण की विषबेलि, विरोध होने पर भी, बढ़ती ही जा रही है। यहां तीन हजार से अधिक जातियां हैं। छोटे बड़े सैकड़ों सम्प्रदाय हैं। आरक्षित समुदाय, किसी समय, अलग देश की मांग कर सकता है। बेशरम, वास्तविक देशद्रोही, सत्ता के लोभी लोग खालिस्तान जैसे अनेक हिस्सों की मांग करने वालों को पैदा कर देंगे। सवर्णों में भी जातिगत आरक्षण किसी समय होगा। सारे पदों को आरक्षित करने पर, वर्चस्व के लिए गृहयुद्ध संभव है। अनेक जयचंद अब भी हैं। अतः मुगल (तालिबान) शासन आ सकता है।

देश को विभीषिका से बचाने के लिए हर प्रकार के आरक्षण का पर्याप्त विरोध करना आवश्यक है। तभी समरस समाज बन सकेगा।

(57)
पन्द्रह अगस्त

आज के दिन का सबसे बड़ा संदेश है कि भारतवासी, विशेष रूप से राजनेता, याद करें --ओ मेरे वतन के लोगों जरा आंख में भरलो पानी, जो शहीद हुए हैं इस पर, याद करो कुर्बानी।

(58)
अर्थ की शुद्धि

जैसे सांप केंचुल को छोड़कर सुखी हो जाता है, उसी प्रकार परिग्रह और बेइमानी से प्राप्त धन को त्याग कर मनुष्य निश्चिंत और सुखी हो जाता है। इसीलिए ब्राह्मण यज्ञ करके और क्षत्री दान देकर सुखी रहता था। धन संग्रह वैश्य का काम था जो आवश्यकता पर सभी की आर्थिक सहायता करता था। योग्यता के सुरक्षित रखने पर धन पुनः मिल जाता है। बार-बार सत्र यज्ञ व विश्वजित यज्ञ करने वालों के इतिहास मिलते हैं। यह भारतीय समाजवादी व्यवस्था थी जिसका नियामक धर्म था।

किसी को कष्ट देकर या हिंसा से प्राप्त धन का भी शोधन उस धन के त्याग से होता है किन्तु हिंसा के जघन्य पाप को दूर करने के लिए प्रायश्चित करना या दण्ड भोगना पड़ता है।

(59)

देश की दशा का ज्ञान

किसी देश की परिस्थिति के आकलन में वहां की नैतिकता के अलावा सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक स्थिति यह तीन बातें महत्वपूर्ण हैं।

जाति, सम्प्रदाय आदि में विभक्त समाज, देश को कमजोर बना देता है।

संस्कृति, परम्परा, शिक्षा आदि में स्थापित मूल्यों के त्यागने पर स्वाभिमान समाप्त होता है। तब समाज निराधार व उच्छृंखल हो जाता है।

महंगाई, अत्यधिक कराधान व विदेशी ऋण विशेषज्ञों की सम्मति के आधार पर, आर्थिक दृष्टि से खोखलापन सिद्ध करते हैं।

इनके आधार पर आत्म-विश्लेषण करना चाहिए।

(60)

असत्य का भार

असत्य भाषण से स्वार्थ सिद्ध करने से बड़ा कोई पाप नहीं है। अन्य कोई पाप करने वाले की, सत्य बोल कर स्वीकार कर लेने पर, पाप के भार से मुक्त होने की प्रक्रिया आरंभ हो जाती है। असत्य बोलने वाले के पाप मे उत्तरोत्तर वृद्धि होती जाती है क्योंकि वह स्वीकार नहीं कर सकता कि उसने पहले झूठ बोला था। स्वीकार करने पर उसका असत्य पर आधारित महल धराशायी हो जायेगा। मजबूर होकर वह हर तरह से पापिष्ठ हो जाता है। सबसे अधिक त्याज्य असत्यभाषी होता है। इसीलिए कहा तुलसी दास ने-

नहिं असत्य सम पातक पुंजा।
गिरि सम होहिं कि कोटिक गुंजा।।

(61)

सत्यार्थ

सत्य का मार्ग सकरा अवश्य है किन्तु सीधा है।

शब्द के द्वारा सत्य को प्रकाशित करना कठिन है।

किसी वाक्य के अर्थ को विवादित कर देना असत्यान्वेषी का लक्षण है। सत्यान्वेषी लेखक के व्यक्तित्व और संदर्भ के अनुसार सत्यार्थ समझ लेता है।

(62)

असत्य का परिणाम

अच्छे संकल्प की पूर्ति के लिए अच्छा साधन न मिले तो प्रतीक्षा करना उचित है। बुरे साधन से सिद्ध किये गये कार्य का दूरगामी परिणाम अवश्य बुरा होता है।

इस सिद्धांत का सत्यापन महाभारत के युद्ध से होता है। छल व असत्य के बल पर विजय पा जाने के बाद पांडव, छत्तीस वर्ष यानी जीवन पर्यंत दुखी रहे। युधिष्ठिर ने स्वयं कहा कि हमसे सुखी मर जाने वाले कौरव आदि ही थे। अन्त में, कृष्ण और पांडव दोनों को पराजय झेलनी पड़ी, मृत्यु भी बुरी तरह से हुई। देश के पराक्रम और इसकी संस्कृति के विस्तार का सिकुड़ना आरंभ हुआ। छल करने वाले कौरवों के भी कुल का नाश हो गया।

असत्य के मार्ग पर चल कर सत्ता लेना, देश, समाज व संस्कृति सभी को संकट मे डालना व स्वयं को अपराधी बनाना मूर्खतापूर्ण अहंकार है। सत्य के मार्ग पर धीरे-धीरे चलना, अपने व सार्वजनिक हित पर ध्यान देना, नीतिसम्मत है।

(63)

त्याग का मूल्यांकन

सामाजिक व शास्त्रीय मर्यादा के विपरीत किया गया त्याग निन्दनीय है। परिवार, पत्नी, सम्माननीय श्रेष्ठजन, नैतिकता, सत्य, न्याय आदि सामाजिक दृष्टि से मूल्यवान वस्तुओं का त्याग करने वाले व्यक्ति निन्दनीय, स्वार्थी अहंकारी, धूर्त और अविश्वसनीय होते हैं।

गीता में तामस, राजस व सात्विक तीन प्रकार के त्याग बताये गये हैं। तामस और राजस त्याग मूर्खता और अहंकार के कारण हैं। स्वधर्म का पालन करना तथा उससे प्राप्त फल का त्याग करना ही उत्तम त्याग है। फलाकांक्षा के अभाव में सत्य का मार्ग दृढ़ रहता है। यही बात गीता में लिखा है- *यस्तु कर्मफलत्यागी स त्यागीत्यभिधीयते।।*

(64)
कर्तापन

कर्तापन का होना स्वाभाविक है। इससे उत्पन्न होने वाले दोष से बचने के लिए दो मार्ग हैं। प्रथम -ज्ञानमार्ग। ज्ञानमार्गी के लिए सारी घटनाएं प्रकृति से संचालित हैं। वह कुछ कर ही नहीं रहा है।

द्वितीय- कर्ममार्ग। कर्ममार्गी के लिए व्यक्ति ही कर्ता है। पाप-पुण्य के बन्धन से बचाने के लिए उसे निष्काम कर्मयोग की विधि बताई गई है।

तीसरा मार्ग नहीं है।

(65)
समाजवाद

सत्ता का केन्द्र व्यक्ति या सरकार में नहीं बल्कि समाज में होना ही समाजवाद का सही अर्थ है। आर्थिक या बौद्धिक स्तर पर समानता की कल्पना प्रकृति के प्रबल नियम के विरुद्ध है। ऐसा करने के प्रयास में समाज में अनेक प्रकार की समस्याएं पैदा होती हैं, और व्यक्ति तथा मानवता का सही विकास असंभव है।

समाजवादी सत्ता का केन्द्र बनाने के लिए समाज में आपसी एकता, परस्पर विश्वास, योग्यता और उच्च मूल्यों का आदर होना आवश्यक है। समाज मे लिङ्ग, जाति या संप्रदाय के आधार पर परस्पर विरोधी वर्गों को बनाना समाजवाद का उपहास है।

प्रत्येक व्यक्ति को अपनी योग्यता के अनुसार विकास करने का समान अवसर और योग्य व्यक्तियों द्वारा सर्वहित की व्यवस्था भारतीय समाजवाद है। अपने देश मे इस मानदंड को पाने के लिए देशप्रेमियों को प्रयास करना चाहिए।

(66)
जन सुनवाई

इक्कीसवीं सदी के द्वितीय दशक में उत्तर प्रदेश सरकार की एक योजना जन-सुनवाई की है। प्रचार है कि इसमें शिकायत भेजने पर, मुख्यमंत्री की

निगरानी में, तत्काल कार्रवाई होती है। मैनें भी एक शिकायत भेजा जिसमें गांव भर की सिंचाई की सुविधा और राजकीय जमीन पर से अतिक्रमण हटाने की प्रार्थना की गई। सार्वजनिक हित व राजकीय जमीन की सुरक्षा के लिये नहर के गूल को चालू करना सिंचाई विभाग की स्वतः जिम्मेदारी है।

छः महीने में, चार बार शिकायत भेजने पर भी कोई कार्यवाई नहीं हुई। कहीं से एक मिसकॉल आती है, उस पर हम कालबैंक नहीं कर सकते हैं। इसके बाद, चारों बार, शिकायतकर्ता संतुष्ट, निस्तारित या निक्षेपित लिखकर निस्तारण की सूचना लिख दी जाती है।

इससे यह विश्वास होता है कि सरकार की सारी योजनाएं केवल प्रचार व प्रदर्शन हैं। इससे समझदार लोगों को सरकार पर विश्वास नहीं रह गया है।

देश के वास्तविक विकास के लिए ईमानदारी की आवश्यकता है।

(67)
असंभव

जो काम वास्तव में असंभव है, वह संभव हो ही नहीं सकता है। किन्तु झूठ बोलने वाले उसे भी किया हुआ सिद्ध कर लेते हैं। वाह रे प्रचारतंत्र!

इसे पहचानने की बुद्धि होनी चाहिए।

(68)
बदनाम बुरा

असत्य का रोजगार करने वाला, धीरे-धीरे इतना बदनाम हो जाता है कि उसकी सही बात भी झूठी लगती है। उसका कोई साथी नहीं रह जाता है। उसकी बदनामी पाखण्डी और नकारा के रूप में हो जाती है। नहीं भूलें कि - बद अच्छा बदनाम बुरा।

(69)
धैर्य और सत्यनिष्ठा

धैर्य एक स्वाभाविक गुण है। आशा बनाये रखकर, अपने उद्देश्य की ओर अग्रसर होते रहना धैर्य का फल है। मानव की बुद्धि बहुत विशाल होती है। वह शतक्रतु हो सकता है। लगे रहने पर, कोई न कोई रास्ता पा जाता है।

धैर्य होने पर ही सत्यनिष्ठा बनी रहती है। ईमानदारी का कोई विकल्प नहीं है। बेईमान व पाखण्डी का भंडाफोड़ होकर रहता है -

उघरहिं अंत न होइ निबाहू।कालनेमि जिमि रावण राहू।।

अतः, धैर्यपूर्वक सन्मार्ग पर दृढ़ रहने में ही मानव-जीवन की सार्थकता है।

(70)

जनहित

कीरति भनिति भूति भलि सोई।
सुरसरि सम सब कर हित होई।।
अरिहुं क अनभल कीन्ह न रामा।
मैं शिशु सेवक यद्यपि वामा।।

जनहित या व्यक्ति के हितसाधन के विषय में यह चौपाइयां मार्गदर्शक हैं। बिना भेदभाव के, सर्वहित करना आदर्श है। शत्रु या विपक्षी का नियंत्रण करने में भी उसके दूरगामी हित की भावना करना धर्मसम्मत कार्य है।

(71)

कमल-पत्र

जय जवान, जय किसान का नारा देने वाले श्री लाल बहादुर शास्त्री, अपने नारा एवं आचरण की विशेषता के कारण जनमानस में अमर हैं। नेहरू के परम विश्वसनीय और सन्निकट होते हुए भी, वे अपनी संस्कृति के अनन्य प्रेमी बने रह गये, यह उनकी दृढ़ सत्यनिष्ठा और संकल्पशक्ति का प्रमाण है। कमल-पत्र की तरह असंग एवं निर्विवाद व्यक्तित्व के धनी, उन महापुरुष को आज उनके जन्म की तारीख पर, सादर स्मरण किया जाता है।

(72)

ईश्वर और जीव

जिसके वश में माया है वह ईश्वर है। जो माया के वश में है, वह जीव है। तत्वज्ञान से ईश्वर और जीव का भेद समाप्त हो जाता है। ईश्वर की तरह जीव भी माया (अविद्या) का संवरण कर सकता है। ज्ञान का अभाव ईश्वर व जीव में भेद करता है। तुलसी ने कहा है -

जौ सबके रह ज्ञान एकरस।
ईश्वर जीवहिं भेद कहहु कस।।

तत्वज्ञान में बाधक तत्व अविद्या है। अविद्या का मूल कामना है। इसी के लिए गीता मे लिखा है – 'तस्मादज्ञान संभूतं हृत्स्थं ज्ञानासिनात्मनः। पापात्मानं प्रजह्येनं ज्ञानविज्ञान नाशनम्।।' कामना के त्याग से ज्ञान-विज्ञान प्रबल रहते हैं।

'चाह गई चिन्ता गई मनवां बेपरवाह। जाको कछू न चाहिए, सो शाहन को शाह।'

गीता में जीव को ईश्वरत्व प्रदान करने की यही औपनिषदिक विधा बताई गई है।

(73)
अवश्यंभावी

यम सेना की विकट ध्वजा अब जरा दृष्टि में आती है।

करते हुए युद्ध दुष्टों से
देह हारती जाती है।।

देह का हारना निश्चित ही है। वह इन्द्रियों का संवाहक मात्र है। उनका स्वामी मन भी हार सकता है। सद्बुद्धि की आज्ञा में रहने पर मन अजेय होकर जन्मान्तर में सभी भौतिक योजनाओं को पूरा करते हुये, भवरोग की सारी सेना को भी परास्त कर सकता है। सद्बुद्धि की कामना करें। इस कामना की पूर्ति के लिए सत्य का ब्रत आवश्यक है।

(74)
दुर्दशा का निवारण

स्वतंत्रता के समय से ही हमारे प्रभावशाली नेताओं ने जातिगत, सम्प्रदायगत, विदेशी संस्कृति विषयक, व्यक्तिगत या दलगत एजेंडा लागू करना आरंभ किया। भारतीय समाज और संस्कृति की अवहेलना करने के कारण देश में समस्याएं बढ़ने लगीं। अब भी भ्रष्टाचार चरम पर है और व्यक्ति या दल का ही वर्चस्व बढाने के प्रयास में देश और समाज की दुर्दशा हो रही है।

इस दुर्दशा का निवारण तभी होगा जब सत्ता का लोभ छोड़कर, सत्य, न्याय और नैतिकता को प्राथमिकता देते हुए, संस्कृति, समाज और देश का वर्चस्व बढ़ाने का संकल्प लेने वाले, नैतिक राजनैतिक दल के माध्यम से, राजनीति में आयेंगे।।

(75)
केन्द्र बिन्दु

सम्पूर्ण मानवीय व्यवस्था का केन्द्र व्यक्ति है। उसी के लिए समाज बनता है। समाज के लिए संस्कृति होती है। संस्कृति की सुरक्षा के लिए देश होता है। देश की आन्तरिक और सीमा की सुरक्षा के लिए राष्ट्र होता है। देश व राष्ट्र संश्लिष्ट होते हैं। उनके अस्तित्व और सार्थकता के लिए सरकार, शासनसत्ता के विविध अंग होते हैं।

सरकार की व्यवस्था में नीचे के क्रमशः सभी घटक सुरक्षित रहें तभी व्यक्ति की योग्यता के अनुरूप भौतिक और आध्यात्मिक उन्नति के अवसर संभव है। किसी देश के विषय में आकलन इसी आधार पर होता है।

(76)
मौलिक परिवर्तन

दलगत राजनीति को न्याय व कार्यपालिका के कार्यप्रणाली से दूर रखना, देश और समाज के हित में है। निष्पक्ष होना और उसका प्रदर्शन करना दोनों जरूरी हैं।

भारतीय संस्कृति और इस राष्ट्र को अपमानित करने वाले और विरोधी देश का समर्थन करने वाले लोगों के विरुद्ध की जाने वाली कार्यवाही अपर्याप्त है, और सख्ती होनी चाहिए। किन्तु उलटा हो रहा है। थोड़ा सा करके बहुत प्रचार करने और राजकीय कर्मचारियों को विवादित करने की नीति घातक हो रही है। इससे वोट भले मिल जाये किन्तु देश की स्थिति कई तरह से खराब होगी। देश का हित सब की योजना मे गौड़ है, यह स्पष्ट हो रहा है।

समतामूलक कानून और प्रशासन को निष्पक्ष तथा प्रभावी बनाना सभी राजनैतिक दलों का आदर्श होगा तभी यहां सुशासन संभव है।

(77)
लौह पुरुष

आज लौहपुरुष सरदार पटेल को श्रद्धांजलि देते हुये देश की उर्वराशक्ति पर गर्व महसूस हो रहा है। आशा है कि भारत भूमाता की कोख अब भी उस तरह का सपूत पैदा करेगी। उनकी अद्भुत कार्यशैली कम बोलने और अत्यधिक

कर दिखाने के लिये विख्यात है। आज के नेताओं का, बोलने और करने का तरीका, ठीक विपरीत है। इन लोगों का दमन करने के लिए, पटेल जी को, स्वर्गसुख छोड़कर, पुनः देशसेवा के लिए आना, सौभाग्य की बात होगी।

(78)

विकल्प की खोज

आजकल बेहयाई बहुत कारगर कवच का काम कर रही है। भ्रष्टाचार, महंगाई, तुष्टीकरण, आदि का भी समर्थन सफलता के साथ हो रहा है। यह अशुभ लक्षण है। लोक मृतप्राय है तो लोकतंत्र में भी तानाशाही चलेगी ही। इसमें चुप हो जाना पराजय मानना है और बोलना अरण्यरोदन है।

इस स्थिति को बदलने के लिए विकल्प के रूप में, करोड़ों की संख्या मे पढ़े लिखे, नैतिक मूल्यों को आदर और वृद्धों को सम्मान देने वाले नवयुवक ही आ सकते हैं। शिक्षा के द्वारा ऐसे नवयुवक पैदा करना अध्यापकों तथा प्रबुद्ध लोगों द्वारा ही संभव है।

(79)

आत्मचिंतन

अज्ञान के नाश का लक्षण है अहंकार और राग-द्वेष से रहित होकर, अपने को अमर समझना। इन लक्षणों को आदर्श बनाकर आत्मचिंतन और व्यवहार करना ज्ञानमार्ग पर आरूढ़ होना है। व्यवहार मे मूल्यों की वरीयता से ही व्यक्ति की आध्यात्मिक साधना का आकलन हो जाता है।

आत्मचिंतन द्वारा अपने को संतुष्ट रखना और व्यवहारा द्वारा, अपनी वाणी ही नहीं कर्म से भी, लोगों का विश्वास प्राप्त करना, वास्तविक आध्यात्मिकता है।

(80)

दुराव और प्रचार

कहीं गोपनीयता से तो कहीं प्रचार से लाभ होता है। दुराव के विषय में मानस में है-

'जोग जुगुति तप पुन्य प्रभाउ। तबइ फलइ जब करिय दुराऊ।।' तपस्या और साधना रामबाण हैं। इन्हें गोपनीय रखना हितकर है। इनका प्रचार करके जनमानस को प्रभावित करना निश्चित ही पाखंड है। पाखंड से बचना बुद्धिमानी है।

सत्य और नैतिकता का प्रचार अपने व्यवहार से करना मानवता की साधना है जो आध्यात्मिक साधना के पाखंड से बचाता है।

(81)

अविश्वसनीय का बहिष्कार

यहां चाहे जिस फितरत से एकाएक धनी बनने वाले जब विदेशों में अपना उत्पादन व रोजगार करने लगते हैं और वहां रहना पसन्द करते है, तो वे अपने देश के लिए विश्वसनीय नहीं रह जाते हैं।

जिसको अपनी संस्कृति का ज्ञान नहीं है और जो उसका अनादर करके विदेशी संस्कृति और सभ्यता पसन्द करता है या भारतीय संस्कृति और धार्मिकता का ढोंग करता है वह भी यहां विश्वसनीय नहीं है।

हमारे यहां के राजनेता, पूंजीपति, खिलाड़ी, दलाल, मनोरंजन कर्मी व कलाकार, जो एकाएक धनी बनने में सक्षम हैं, सब अविश्वसनीय हैं। जनता को इन लोगों का बहिस्कार करना चाहिए। इससे लोकनीति की प्रतिष्ठा होगी।

(82)

लोकनीति की विजय

किसान नेता और सत्तादल के नेता के द्वन्द्व-युद्ध मे किसानों की विजय गर्हित राजनीति पर लोकनीति की विजय है। यह शुभ लक्षण है । इस घटना ने गर्वित दुःसासन और भीमसेन के द्वन्द्व-युद्ध की महाभारत की कहानी की याद दिलाई।

(83)

बंधन से मुक्ति

कष्टों और समस्याओं से मुक्ति की कामना और प्रयास सभी करते हैं। बन्धन का न रहना मुक्ति है। बन्धन अनेक तरह के हैं। रोग, कर्ज, गरीबी, कुसंग, भय, पराजय, व्यसन, मानहानि, वियोग, मृत्यु आदि के रूप में बन्धन, समयसमय पर, एक न एक, सबको मिलते हैं। अतः, संसार का पर्याय बन्धन है। नरसी भगत की पत्नी मरी तो पुत्र साथ में था। पुत्र भी मर गया तो उन्होंने ईश्वर की कृपा मानते हुये कहा कि अंतिम बंधन की कील भी निकल गई। इस तरह कोई पुत्र को भी बंधन मान सकता है। वास्तव में आसक्ति ही बंधन है

जिसके न होने पर संसार के सारे बन्धन समाप्त हो जाते हैं। अनासक्त होने पर कामनाऐं तथा उससे उत्पन्न होने वाला क्रोध, सब नियंत्रित हो जाते हैं। इसी से वैदिक कर्मयोग सिद्ध होता है जिससे संसारी कष्टों से मुक्ति मिलती है।

इसके बाद, दूसरी तरह का बंधन, परलोक, नरक, पुनर्जन्म आदि भवचक्र के रुप में दिखाई पड़ता है। यह मृत्यु के बाद का भय है। इस भय का निवारण भी इसी जीवन में करना पड़ता है। कर्मयोग की सिद्धि से संसार का भय दूर करके, ज्ञाननिष्ठा द्वारा परलोक का भय समाप्त किया जाता है। इसके बिना यह जीवन सार्थक नहीं कहा जाता है। अतः श्रुतिवाक्य है - *इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति नो चेदवेदीन्मती विनष्टिः।* पूर्णरूपेण मुक्ति की कामना की पूर्ति आत्मज्ञान से ही संभव है। *अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते* - यह उपनिषद मंत्र यही बताता है। *सा विद्या या विमुक्तये* - कहकर विद्या की परिभाषा बता दी गई है। संक्षेप में यही वेद विहित जीवन साधना है।

(84)
अपरिग्रह

आज की सभ्यता उपभोक्तावादी होकर वैश्विक स्तर पर एक जैसी हो गई है। विकास की आंधी में उड़ते हुए सारी मानव जाति काल के मुंह में प्रवेश करने जा रही है। प्रकृति के प्रकोप से सभी त्रस्त हैं। भारत जैसा देश जहाँ - *ईसावास्यमिदं सर्वं यत्किंचित जगत्यां जगत्। तेन त्यक्तेन भुंजीथा मा गृधः कस्यस्वित् धनम्।।* - जैसे वेद वाक्यों द्वारा अपरिग्रह की शिक्षा दी गई थी, वहां भी अपनी संस्कृति को छोड़कर अमेरिका और यूरोप की नकल में असंयमी और यथासंभव उपभोक्ता होने को आदर्श माना जाने लगा है। जीडीपी बढ़ाने का नशा है। इसे रोकना ही श्रेयस्कर है।

वैश्विक बाजार का मोह छोड़कर, स्वदेशी उत्पाद मे गुणवत्ता बढ़ाने और इसमे प्रोत्साहन देकर प्रतिस्पर्धा बढ़ाने पर हम आत्मनिर्भर होंगे। उपभोग के स्थान पर आवश्यकताओं में कटौती करने पर हम सुखी और प्रकृति के उत्पातों से सुरक्षित रह सकते हैं। इससे खानपान, वेशभूषा, व्यवहार आदि में अपनी संस्कृति की सुरक्षा भी होगी। त्याग और अपरिग्रह का यह संदेश देकर हम विश्वगुरू तथा मानवता के रक्षक हो सकते हैं।

(85)

गृहस्थाश्रम में साधना

गृहस्थ को स्वधर्म के पालन करने में धर्म, अर्थ और काम तीनों के प्रपंच का निर्वहन करना पड़ता है। इनके साथ ही लोकसेवा का विशेष संकल्प बनाने पर भार दुर्वह हो जाता है। ऐसी स्थिति में अद्वैत तत्व का चिंतन बाधित हो सकता है। उस स्थिति में 'यद्यद् कर्म करोमि तत्तदखिलं शम्भो तवाराधनम्' की भावना द्वारा द्वैत भाव से आराधना करके योगक्षेम की व्यवस्था ही संभव है। अन्य आश्रमों में विचलन और पतन का भय रहता है लेकिन आदर्श गृहस्थ द्वैत की उपासना व स्वधर्म का पालन करते हुये पतन के भय से मुक्त रहता है। आगे भावना के प्रबल होने पर, अद्वैत तत्व के साक्षात्कार के लिये सद्गृहस्थ को स्वतः वैराग्य, इस जन्म या जन्मांतर में होता है। तब निर्विघ्न अद्वैत की साधना संभव है।

(86)

विकास बनाम सुखशांति

आजकल विकास ही सुखशांति का विरोधी है। अतः हमें विकास का भ्रम छोड़ कर, सुखी रहने का उपाय करना आवश्यक है। सुखी रहने के लिए स्वतंत्रता चाहिए। स्वतंत्र रहने केलिए बौद्धिक शक्ति का अर्जन अनिवार्य है। इसी के होने पर सारी संपदा हमारे अधीन होगी। अतः योज्ञता की वृद्धि और ईमानदारी को वरीयता देनी पड़ेगी। अपनी प्रचीन संस्कृति के अनुशीलन से ही इसका लाभ मालूम होगा और तब विश्वास होगा।

(87)

दर्शन शास्त्र का चरमोत्कर्ष

अपने यहाँ दर्शन शास्त्र का उद्देश्य चरम-तत्व का निर्धारण और उसकी प्राप्ति, बोध या अनुभूति था। अपनी रुचि, प्रतिभा और आन्तर्दृष्टि के अनुसार ऋषियों ने कई प्रकार के दर्शन शास्त्रों का प्रणयन किया। सभी का आधार वेद ही था। इनकी प्रतिक्रिया में कुछ अवैदिक दर्शन भी बने और प्रचलित हैं।

पाश्चात्य जगत में धर्म एवं किसी भी विषय का अन्तर्निहित रहस्य जानने की विद्या को फिलासफी कहा गया। वहां के प्रभाव से दर्शन भी फिलासफी का समानार्थक हो गया है।

मनुस्मृति में है - दर्शनेन विहीनस्य संसारः प्रतिपद्यते। अन्यत्र भी है - सा विद्या या विमुक्तये। इस तरह मुक्तिदायिनी विद्या ही दर्शन है, यह हमारी मान्यता रही है। मुक्ति क्या है, इस विषय में उपनिषदों में निहित ज्ञान, जो मानवीय मेधा की परम उपलब्धि है, निर्णायक है। नेतिनेति के द्वारा इंगित ब्रह्म ही जीव भी है, यह अद्वैत वेदांत का उद्घोष है। इसी के श्रवण, मनन और निदिध्यासन से जीव स्वयं ही ब्रह्मत्व की अनुभूति करता है और वही हो जाता है। 'जानत तुम्हंहि तुम्हंहि होइ जाई।।' यही जरा मरण के भय से रहित, परम स्वतंत्र, मुक्ति की स्थिति है। यह स्थिति किसी नाम और रूप धारण करने वाले आराध्य की उपासना से नहीं बल्कि सत्वशुद्धि और ज्ञान निष्ठा से ही संभव है। ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः। यही सिद्धांत दर्शनशास्त्र का चरमोत्कर्ष है।

(88)
दर्शन और धर्म

ऋषि की अन्तर्दृष्टि से उत्पन्न ज्ञान दर्शन है।दर्शन के आधार पर आचार-व्यवहार का नियम धर्म है। धर्म, दर्शन का अनुगामी होता है। एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति - आदि अनन्त आर्ष ज्ञान का उपयोग करके धर्मसूत्र और स्मृतियों का प्रणयन, धर्म का साक्षात्कार करने वाले मुनियों ने किया। इनसे सनातन वैदिक धर्म प्रवर्तित हुआ। भारत भूमि पर सहस्त्रों वर्ष तक इस धर्म का शासन रहा।

महाभारत काल के बाद, अवैदिक तत्वों के आधार पर, नये धर्म प्रचलित हुये। बाद में इनके तार्किक दर्शन भी बनाये गये। इस परिवर्तन के प्रभाव से बौद्ध, जैन और अनेक उपभेदों के साथ नये धर्म भी प्रवर्तित हुए। वैदिक सनातन धर्म का ह्रास होने लगा। शताब्दियों बाद, कुमरिल भट्ट तथा आचार्य शंकर ने वैदिक दर्शन और तदाधारित सनातन धर्म का पुनरुद्धार किया। लेकिन कुछ समय बाद विशिष्टाद्वैत आदि भक्ति सम्प्रदाय के द्वैतवादी आचार्यों ने वैदिक दर्शन को धूमिल करना आरंभ किया। भक्तिमार्गी धर्म आगे हो गया और दर्शन उसका अनुयायी बन गया। फलतः, वैदिक दर्शन के साथ, सनातन धर्म भी निस्तेज होता चला गया और हम दूसरे धर्म और विपरीत संस्कृति के शासकों की गुलामी करने को विवश हो गए। अब, पढ़ने-पढ़ाने के लिए अद्वैत वैदिक दर्शन उपलब्ध हैं किन्तु आचार्य शंकर के पीठों के मठाधीश भी व्यवहार में द्वैतवादी भक्त हो गए हैं।

धर्म के आगे होने और दर्शन के अनुगामी बनने का परिणाम है कि आज आचारहीन, लोकरंजक लोग धर्माचार्य बन रहे हैं और अनेक व्यक्ति भगवान के अवतार बन रहे हैं या मरने पर भगवान बनाये जा रहे हैं। धूर्त लोग अपनी कमजोरी को भी धर्म बनाने के लिए तद्नुसार तार्किक दर्शनशास्त्र की प्रतिष्ठा कर रहे हैं।

आवश्यकता है कि हम तत्वमीमांसा और ज्ञानमीमांसा में वैदिक ज्ञान के आधार पर तार्किक अध्ययन करें। इसके साथ नीतिशास्त्र एवं आचार-व्यवहार के समस्त विषयों पर, पाश्चात्य चिन्तकों की तरह, दार्शनिक दृष्टि से अध्ययन एवं अन्वेषण करें तथा सनातन धर्म को वैदिक दर्शन का अनुयायी बनायें।

(89)
सनातन धर्म सभा

भारतीय संस्कृति एवं सनातन धर्म एक-दूसरे से संश्लिष्ट (मिले-जुले) हैं। वैदिक सनातन धर्म पूरी भारतीय संस्कृति मे अनुस्यूत है क्योंकि वेद का सम्मान पूरे देश में होता है। अनेक आघातों के प्रभाव से सनातन धर्म मे कुछ विकृतियां आई हैं। अतः वर्तमान संविधान भी धर्म के वर्णाश्रम व्यवस्था जैसे मौलिक तत्वों को अनादृत करता है। संस्कृति की रक्षा तथा निर्विवाद एवं प्रभावशाली धर्म की स्थापना केलिए सनातन धर्म के स्वरूप पर चिंतन होना चाहिए। श्री भुवनेश्वरी विद्या प्रतिष्ठान के अन्तर्गत धर्म सभा का आयोजन होता है किन्तु इसका एक विस्तृत और सुसंगठित स्वरूप आवश्यक है।

सनातन धर्म वेद, उपनिषद, स्मृतियाँ, रामायण, महाभारत तथा ऐतिहासिक आख्यानों पर आधारित रहकर शुद्ध स्वरूप में रहेगा। लगभग सहस्त्र वर्षो के अन्तर्गत बने अनेक पुराण तथा ऐतिहासिक ग्रन्थों मे प्रक्षिप्त अंशों के अतार्किक और वेद तथा स्मृतियों से अननुरूप अंशों का निराकरण आवश्यक है। उदाहरण-जाति-व्यवस्था का वर्तमान स्वरूप समाज में अनेक समस्याओं का कारण बना है। यह स्मृतियों से समर्थित भी नहीं है। इसे वर्ण-व्यवस्था में सहायक बनने योग्य रखा जाय, उसका अतिक्रमण करने वाला न रहने दिया जाय। इसी तरह आचार-व्यवहार, तथा कर्मकांड, पंचयज्ञ आदि को गौड़ समझकर, तीर्थव्रत, मंदिर, मेला, नाटक, प्रवचन आदि धर्म के बाह्य कलेवर की आराधना में मनोरंजन करना ही धर्म समझना और अंधभक्त बनना बन्द करना होगा। इनसे धर्माधिकारी ही सब

को मूर्ख बना रहे हैं। तंत्र, योग और पाखंड के द्वारा तथा भाषण देकर हर स्तर के लोग ईश्वर के अवतार बन रहे हैं। इस तरह की अनेक विकृतियों के कारण हम धार्मिक दृष्टि से दुर्बल हो गये हैं।

भारतीय संस्कृति एवं सनातन धर्म का पुनरुद्धार करने के लिए राजनीति नहीं, लोकनीति ही सक्षम है। अतः सनातन धर्म सभा के लिए समाज सेवियों का ध्यान आकृष्ट किया जा रहा है।

(90)
वर्षारंभ

भारतीय ज्योतिष एवं मौसम के अनुसार नववर्ष का आरंभ नवरात्र से होता है। बड़ा दिन मकर संक्रांति से मान्य है। अंग्रेजी कलेंडर की उपयोगिता अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों तक के लिए है। यहां, पच्चीस दिसम्बर और पहली जनवरी की बधाई देने वाले या इन पर उत्सव मनाने वाले, अब भी मानसिक रूप से गुलाम हैं। उनको जानना चाहिए कि हम कहाँ हैं और कौन हैं। आन्तरिक व्यवस्था में एक अप्रैल से ही प्रशासनिक वर्ष भी मान लेने पर विशेष सुविधा होगी।

(91)
प्रतियोगता बनाम निर्वाचन

इन दोनों माध्यमों से आये हुये जनसेवियों की तुलना, भारतीय परिस्थितियों में, करने पर एकदम स्पष्ट है कि निर्वाचन से आये हुये लोग, प्रथम कोटि के लोगों की अपेक्षा, कई गुना भ्रष्ट, अयोग्य, अवसरवादी, झूठे तथा अनैतिक होते हैं। उनके आचरण में, चुनाव के बाद साढ़े चार वर्ष तक तथा अन्तिम छः महीने में जो जमीन आसमान का अन्तर होता है, उससे उनके प्रति विश्वास समाप्त हो जाता है। विडंबना है कि वे अपने दोषों को योग्य लोगों पर आरोपित करके अदंड्य रहते हैं। अनपढ़ और गरीब जनता को प्रलोभन देकर सत्ता लेना और सामान्य-जन का रक्त जोंक की तरह पीना उनकी कुटिल नीति है।

अब, प्रतियोगिता से आए हुये तथा अन्य आत्मनिर्भर कोटि के लोगों को सत्ता पर नियंत्रण करने के लिए एकमत होने का समय है। यही लोग पूरे समाज और देश का कल्याण कर सकते हैं। इस कल्पना को पूर्ण करने के लिए एक नैतिक राजनैतिक संगठन आवश्यक है।

(92)
श्रोता और वक्ता

कोई व्यक्ति जितना अच्छा श्रोता होता है उतना ही कुशल वक्ता बन सकता है। श्रवण का अर्थ ज्ञानार्जन भी है। इसके अभाव में, बिना रहस्य जाने, वाग्जाल को अच्छी वक्तृता नहीं कहा जा सकता है। ऐसा व्यक्ति, अध्यापक होने पर धूर्त और जननेता होने पर बड़ा अनिष्टकारी होता है। इनके चुनाव में सावधानी आवश्यक है। कहा जाता है कि गोर्वाच्योब जानकार थे तथा बोलने में बहुत प्रवीण भी थे किन्तु दूसरों की बात सुनते नहीं थे। अतः सोवियत संघ का विघटन हो गया। जननायक का निर्धारण करते समय, यह देखना चाहिए कि वह कितना जानकार है और अहंकार छोड़कर, दूसरों की बात पर कितना ध्यान देता है।

(93)
लाभ और लोभ

काटे बढ़हिं सीस समुदाई।
जिमि प्रति लाभ लोभ अधिकाई।।
मोह सकल व्याधिन कर मूला।
जेहि ते पुनि उपजहिं बहु सूला।।

मोह से लोभ संभव है। लाभ होने पर लोभ बढ़ता जाता है और लोभ होने पर अनेक तरह की समस्याएं आक्रांन्त करती हैं, मोह प्रबल दिखाई पड़ने लगता है। अतः लाभ होने पर भी सद्वृत्ति पर बने रहने से ही व्यवहार निर्विघ्न रहता है।

सन्त तुलसी दास का यह सुविचारित सिद्धांत व्यक्ति, समुदाय, समाज, राजतंत्र, यानी व्यवहार के हर क्षेत्र मे लागू होता है। लोभवश, सत्य, न्याय, सुनीति तथा स्वधर्म का त्याग न करने मे ही कल्याण है। ठीक कहा है- अत्यधिक लोभ से विपत्ति टूट पड़ती है, ''अतिलोभात् लोकस्य चक्रं भ्रमति मस्तके।।''

(94)
नए चिन्तन की आवश्यकता

अपने देश में सार्वजनिक विषयों पर चिन्तन और उनसे संबंधित क्रिया-कलाप जाति, धर्म, हिन्दू-मुसलमान या स्त्री-पुरूष के आधार पर ही हो रहा है। सत्ता के लोभ में, इससे ऊपर उठकर, नीति बनाने के लिए कोई नहीं तैयार है।

इन्हीं के आधार पर वोटों के ध्रुवीकरण का प्रयास सभी कर रहे हैं। इसका ही परिणाम है कि असत्य, अन्याय, भ्रष्टाचार, अनीति, अविश्वास आदि दुर्गुण लोगों के स्वभाव में स्थायी होते जा रहे हैं। इस मानसिक महामारी पर नियंत्रण करना परमावश्यक है। इसका एकमात्र उपाय है जो हमारी सनातन संस्कृति में निहित है।

भारतीय संस्कृति की पहचान बताने की आवश्यकता नहीं है। हमारे प्राचीन शास्त्रों और परंम्पराओं में यह अब भी उपलब्ध हैं। उन्हें आदर देने के लिए विदेशी, विशेषकर यूरोपीय संस्कृति की परम्पराओं का त्याग करना होगा। हमारे नेता लोग तथा मनोरंजन के विभिन्न क्षेत्रों में प्रभूत धन कमाने वाले ही इस देश की संस्कृति के शत्रु बन गये हैं। आवश्यकता है कि संस्कृति के संरक्षक या विरोधी व प्रछन्न विरोधी (आरक्षण जैसे कानून बनाने वाले) होने के आधार पर हम अच्छे-बुरे मे भेद करें। संस्कृति की सुरक्षा होने पर ही हमारी समस्त समस्याओं का निराकरण होगा। देश का प्राचीन गौरवपूर्ण इतिहास इस तथ्य को प्रमाणित करता है।

(95)

सामाजिक संतुलन

एकबार गुरु नानक अपने शिष्य के साथ भ्रमण कर रहे थे। रास्ते में बाबर की सेना मिल गई और इन दोनों को सामान ढ़ोने के लिए लेकर चल दी। कुछ दूर जाकर, नानक ने बैठकर भजन गाना आरंभ किया और शिष्य वाद्य बजाने लगा। मधुर स्वर ने सब को आकृष्ट कर लिया। बाबर को पता चला तो उसने दोनों जन को छोड़वा दिया।

इस तरह ज्ञान और भक्ति के सहारे अपने को सुरक्षित रखने की शक्ति बहुत से संतों मे थी। लेकिन समाज और देश की सुरक्षा इतने से नहीं संभव थी। गुरु गोविंद साहब ने खालसा सम्प्रदाय स्थापित करके क्षत्री वर्ण को उत्पन्न किया। ब्राह्मण से मिलकर, वैश्य और शूद्र वर्णों को व्यवस्थित किया। इस वर्णव्यवस्था का परिणाम हुआ कि सिख लोगों ने सार्वजनिक सुरक्षा के साथ ही चतुर्दिक उन्नति किया। समर्थ गुरु रामदास ने शिवाजी को क्षत्री बनाकर बड़ा कार्य किया।

उपर्युक्त बातें दृष्टांत हैं। अपने देश के इतिहास में, वर्णव्यवस्था के होने और न होने के कारण सामाजिक और राजनैतिक दशा में उत्थान एवं पतन की

अनेक घटनाएं हैं। ब्राह्मण या क्षत्री के अभाव में अनर्थ हो जाता है। वर्णव्यवस्था की आवश्यकता सर्वत्र है। अपनी संस्कृति मे ऋषियों द्वारा बनाई गई वर्णव्यवस्था का आदर करने पर ही सामाजिक संतुलन बनेगा। तभी राष्ट्रीय गौरव के साथ देश भी सुरक्षित रहेगा।

(96)

निर्वाचन कालीन चिंतन

लोकनीति और राजनीति का पूर्ण नियंत्रण समाज, राष्ट्र एवं देश के ऊपर होता है। इस समय अपने देश की राजनीति को प्रभावित करने वाले समस्त राजनैतिक दल अविश्वसनीय और त्याज्य दिखाई पड़ रहे हैं। उनमें व्याप्त असत्य, अन्याय, अनीति आदि अनेक दुर्गुणों की निन्दा स्वयं राजनैतिक कार्यकर्ता भी करते हैं। सत्ता एवं विपक्ष सभी झूठे हैं। ऐसा होने पर भी लोग, मजबूरी में, इन्ही में से किसी को वोट भी देते हैं।

विचार करने पर, समझदार और ईमानदार लोगों को, झूठे प्रचार से बहकाने वालों को वोट देने की कोई मजबूरी नहीं है। जो लोग लोभ में बिके नहीं हैं और समस्या को समझ रहे हैं, वे नोटा का प्रयोग करके देश की राजनीति में क्रांति कर सकते हैं। यदि नोटा का प्रतिशत पच्चीस भी हो जाय तो देश में नये राजनैतिक संगठन आयेंगे जो सत्य, न्याय और सुनीति के आधार पर सब तरह का विकास और बाह्य तथा आन्तरिक सुरक्षा प्रदान करेंगे। सत्ता और विरोधी दोनों पक्षों का ईमानदार होना आवश्यक है, जो नोटा से संभव है।

(97)

नेता जी

आज के दिन नेताजी सुभाष चन्द्र बोस को याद करते समय हम अपने देश की बौद्धिक और साहसिक उर्वराशक्ति पर गर्व करते हैं। स्वतंत्रता संग्राम के समय जब हमारे बड़े नेता अंग्रेजों की नीति के शिकार होकर, संग्राम की जगह समझौता करना और आंशिक स्वतंत्रता पर तैयार होना आरंभ किया,उस समय वास्तविक सेनानियों ने मोर्चा संभाला। उन सैकड़ों बलिदानियों में, नेताजी सबसे बुद्धिमान और साहसी निकले। नेता शब्द को उन्होंने सार्थक किया। उनकी जीवनी हमारे लिए प्रेरणास्रोत हैं। उनके जन्म और बलिदान से हमारी धरती गौरवान्वित है । उन्हें शत-शत नमन।

(98)
वृद्धाजनों के लिए

कुछ वृद्ध लोगों से कहते हुए सुनता हूं कि अब मेरे जीवन की कोई आवश्यकता नहीं रह गई है। यह अज्ञानमूलक चिन्तन है क्योंकि अधिकांश लोगों का सबसे महत्वपूर्ण काम बाकी ही रह जाता है। मनुष्य का सबसे महत्वपूर्ण काम मृत्यु की तैयारी है। इसे पूरा करने केलिए उसके लिए वैराग्य तथा संन्यास अनिवार्य हैं। तैयारी पूर्ण मानने के लिए अपने से तीन प्रश्नों का उत्तर लेना होता है।

1-क्या अपना अपकार करने वाले सभी लोगों को क्षमा कर दिये है?

2- क्या सभी अपूर्ण संकल्पों का त्याग करके (अकाम) हो गये है?

3- क्या कोई सम्बन्ध अनिवार्य रह गया है या असंग हो गये हैं?

ऊपर जीवनमुक्त और विदेह मुक्ति की दुर्लभ साधना की बातें हैं, किन्तु प्रत्येक साधक कोटि के व्यक्ति को इन्हें आदर्श मानते हुए, यथासंभव, तथैव प्रयास करना चाहिए। जीवन कभी अनावश्यक नहीं है, उसका प्रत्येक क्षण उपयोगी होता है।

(99)
दलित और अल्पसंख्यक

आरक्षण या संरक्षण की आवश्कता पर विचार करते समय आवश्यक है कि दलित और अल्पसंख्यक शब्दों को तर्क और व्यवहार की दृष्टि से परिभाषित करदिया जाय। इन शब्दों का अर्थ जाति और संम्प्रदाय पर आधारित होने के कारण जातिवाद और सम्प्रदायवाद से सामाजिक एवं प्रशासनिक स्थिति में अनेक समस्याएं व्याप्त हैं। इनसे ग्रस्त होकर शासन और प्रशासन भी देशहित नहीं करते हैं।

सही परिभाषा होने पर सर्वथा अनिष्टकारी आरक्षण को समाप्त करना पड़ेगा तथा संरक्षण भी सुपात्र को मिलने लगेगा। शासन को ईमानदारी पूर्वक निर्णय लेना आवश्यक हो गया है।

(100)
राष्ट्रीय गाना

देश हमारा न्यारा भारत देश हमारा प्यारा।

कल्पवृक्ष यह अक्षयवट है, शाखाओं से पूरा।
हर शाखा पर ध्वज विशाल लहराते दूरा दूरा।।देश हमारा---

हिमगिरि से उस रामसेतु तक मिलता भाईचारा।
खासी गारो जयन्तिया से अरावली नहिं न्यारा।।देश हमारा--

काबेरी से ब्रह्मपुत्र तक है गंगा की धारा।
इसकी धरती अमृत सींचे है संस्कृति से न्यारा।।
देश हमारा न्यारा भारत देश हमारा प्यारा।।

(101)
भ्रष्टाचार पर अंकुश

व्यक्तिगत जीवन तथा सामाजिक एवं राजनैतिक क्रियाकलापों में व्याप्त भ्रष्टाचार पर अंकुश लगाने की बात बहुत लोग सोचते हैं किन्तु उन्हें, या तो अपने को इसी मे लिप्त होने का ज्ञान नहीं होता है, या उसे क्षम्य समझते हैं। समाज एवं राजनीति में कैंसर की तरह व्याप्त इस समस्या के निवारण के लिए परछिद्रान्वेषण की जगह आत्मविश्लेषण की आवश्यकता है। अपने को सुधारने के लिए निन्दक को भी पास ही रखना होगा।

सत्ता से सम्पन्न व्यक्ति को ईश्वर या धर्म का भय न हो तो वह निरंकुश हो जाता है। इस अंकुश को स्वीकार करके समर्थ व्यक्तित ही ऊपर से भ्रष्टाचार का समापन कर सकता है। इसका प्रभाव नीचे तक जाता है। तर्कसंगत, सत्य और न्याय पर आधारित तथा नैतिक दृष्टि से समन्वित संविधान, कानून और उनका क्रियान्वयन होने पर ही भ्रष्टाचार की समस्या पर नियंत्रण संभव है।

(102)
उत्तम भारतीयता

हिन्दूवाद, ब्राह्मण आदि जातिवाद, दलित आदि समाजवाद, सम्प्रदायवाद आदि में से किसी का पोषण करना भारतीयता का लक्षण नहीं कहा जा सकता

है। भारतीयता का सबसे महत्वपूर्ण स्वरूप उसकी प्राचीन संस्कृति है। इसी स्वरूप को समाप्त करने के लिए मुगलों तथा अंग्रेजों ने एक सहस्त्र वर्ष तक प्रयास किया किन्तु उन्हें आंशिक सफलता ही मिल सकी।

स्वतंत्रता के बाद से ही अपनी संस्कृति का नाम लेने वाले किन्तु उसे विकृत करके उसके मनमाना स्वरूप की स्थापना करनेवाले लोग सत्ता में आ रहे हैं। संस्कृति का प्राण शास्त्रों, परम्पराओं एवं वृद्ध माताओं में अवशिष्ट है, जिनकी बातों की सार्वजनिक रूप से उपेक्षा हो रही है। मंदिर, मेला, यात्रा, योगतंत्र आदि के द्वारा, निष्प्राण संस्कृति का प्रदर्शन करके उसके नाम का लाभ अब भी लिया जा रहा है।

इस तरह, हमारी संस्कृति की दशा उस बकरे की बनी है जिसे बलि देने के लिये खूब खिलाया- पिलाया और सजाया जाता है। इस हालत मे परिवर्तन करके आर्ष व्यवस्था से (समयोचित अंश ग्रहण करके) वर्णाश्रम विधान के अनुसार समाज का पुनरुद्धार करना यानी शास्त्रज्ञान, ब्राह्मणत्व, सतीत्व, सत्य, दान आदि को प्रतिष्ठित करके, निष्प्राण संस्कृति मे प्राण संचार करना ही उत्तम भारतीयता कही जायेगी।

(103)

कन्या का महत्व

गृहस्थ व्यक्ति के लिये कन्या एक अमूल्य सम्पत्ति है। कन्या रूपी अमूल्य दान देने से परलोक मे सद्गति तथा लोक मे सुयश मिलता है। कन्या को आजीवन सुखी रहने और दूसरों की दृष्टि में भी, कन्या-रत्न बनाने के लिए उसे संस्कारयुक्त और विविध कलाओं में प्रवीण बनाना आवश्यक है। इस भावना से कन्या का पालन-पोषण करना चाहिए।

हमारे इतिहास मे कन्याधन का महत्व प्रदर्शित करने वाले अनेक प्रसंग हैं। पार्वती को शिव को प्रदान करके पर्वतेश्वर गौरवान्वित हुए। रैक्व गाड़ीवान को कन्या देकर राजा जानश्रुति ने संवर्ग विद्या प्राप्त किया। महर्षि च्यवन को सुकन्या का दान करके राजा शर्याति पाप से मुक्त हुए। पुत्री योजनगंधा को देने के लिए गुह ने राजा शांतनु को याचक बनाया। बाजीराव पेशवा को अपनी कन्या देकर बुंदल राजा छत्रशाल उपकार का बदला दे सके। ऐसे अनेक प्रसंग हैं। अब भी

योग्य कन्या पैदा करके उसे योग्य वर को दान करने से दोनों कुलों का सम्मान बढ़ते हुए देखा जाता है। ऐसे संस्कारवान परिवारों में कन्या का महत्व अब भी है। अन्यथा होने पर कन्याएं पिता से कन्यादान करने का अधिकार छीन ले रही हैं। अतः कन्या की उपेक्षा होने लगी है।

आजकल कन्या के संरक्षण के लिए दिखावटी राजकीय प्रयास होता है। इसके अनेक कारण हैं। नारी सशक्तिकरण के नाम पर परिवारों के विघटन का प्रयास इस समस्या के लिए एक विशेष कारण है। इससे कुल परंपरा, पारिवारिक संगठन, बालकों मे सुसंस्कार आदि बहुमूल्य तत्व समाप्त हैं। परिवारों से ही समाज बनता है। उनकी विकृति से समाज विकृत हो रहा है। नारी के दुष्ट होने पर दो कुलों का नाश होता है – ''कुलद्वयं हन्ति मदेन नारी कूलद्वयं क्षुब्धजला नदीव।'' लड़कियों को सिनेजगत और पाश्चात्य कुप्रभाव से बचाने के लिए, न कि वोट बैंक बनाने के लिए राजकीय प्रयास होना चाहिए।

एक लड़की ही एक परिवार बनाती है। उसे गृहिणी के पद के लिए योग्य बनाने के बाद, प्रतिभा और मर्यादा के अनुसार, अन्य तरह के विषय और कार्य भी जानने और करने का अवसर दिया जाना चाहिए। लता मंगेशकर की तरह गुणी होने पर कन्या स्वयं प्रतिष्ठित हो सकती है। कन्या को योग्य बनाना सामाजिक क्षेत्र का कार्य है। अतः समाज की आकांक्षा के अनुसार राजकीय सहयोग भी अपेक्षित है।

(104)
तब और अब

जटिलो मुण्डित कुंचित केशः, उदर भरंहित बहु कृत वेषः। - भज गोविंदं भज गोपालं गोविंदं भज मूढ़ मते। (चर्पर पंजरिका) - यह लम्बा स्तोत्र है जो शंकराचार्य के द्वारा रचित कहा जात है। इसे भजन के रूप में, अद्वैती लोग, वैराग्य उत्पन्न करने के लिए, पुराने जबानें में, गाया करते थे। अब, इसका उपयोग भजन में नहीं आचरण में देखा जाता है किन्तु इससे वैराग्य नहीं, राग ही उत्पन्न होता है। जटा बढ़ाये, मुण्डन कराये साधु-संतों के साथ ही, टीवी पर उपदेशक, समाजसेवी, राजनेता और आतंकी भी यही आचरण कर रहे हैं। इन सब की कामनाओं की भूख जितनी प्रबल है, उतनी ही आहार सामग्री, मूर्ख समर्थकों के रूप में इन्हें मिलती जा रही है।

समाज को धूर्तों का अन्न बनने से बचने के लिए उसे, शत्रु और मित्र, साधु और असाधु, ईमानदार और बेइमान आदि में अन्तर जानना आवश्यक है। इसके लिए ही नैतिकता की शिक्षा पर बल दिया जाता है। सदाधार और नैतिकता ही, दिव्यदृष्ट देकर, आदरणीय और तिरस्कार के योग्य का भेद अवगत करायेंगे। नीचे के स्तर से सुधार इसी उपाय से होगा। ऊपर के स्तर से सुधार के लिए राजनीति मे परिवर्तन करना ही एकमात्र उपाय है।

नैतिक सामाजिक संगठन के द्वारा व्यक्ति व समाज (नीचे की स्थिति) तथा एक नैतिक राजनैतिक संगठन के द्वारा शासन (ऊपर की स्थिति), दोनों को बदलने का चल रहा उपक्रम सफल हुआ तो, अब भी तब में परिवर्तित हो जायेगा।

(105)
सही सोच, सही दिशा

हिन्दू-मुस्लिम, सवर्ण-असवर्ण, स्त्री-पुरूष, इन तीनों भेदकारी शब्दयुगल का त्याग करने पर ही देश भारी विभीषिका से बच सकता है। इनके स्थान पर भारतीयता, समाज एवं परिवार के रूप मे चिंतन हितकर होगा। परस्पर विद्वेष की जगह विश्वास पैदा करना पड़ेगा। सरकार यहां रहने वाले एक भी नागरिक को देश के बाहर नहीं निकाल सकती है, न ही जबरन देशभक्त बना सकती है। किसी को गरीब या अमीर बना सकती है किन्तु सामाजीकरण के बिना मानसिक और बौद्धिक दरिद्रता को नहीं समाप्त कर सकती है। स्त्री को घर के बाहर घूमने की व्यवस्था कर सकती है किन्तु माता-पिता की शिक्षा बिना, उसे गृहिणी के पद पर प्रतिष्ठित और भारतीय नारी की तरह सुरक्षित नहीं कर सकती है।

भारतीयता की भावना और अपनी मूल संस्कृति की सुरक्षा से ही देश में आन्तरिक शान्ति तथा सामाजिक और पारिवारिक सौहार्द की व्यवस्था संभव है। अतः लोकनीति से सम्बंधित इन तीनों विवादग्रस्त विषयों पर, सरकार द्वारा वर्तमान अनीति का त्याग करके, समयोचित सोच और दिशा का निर्धारण करना अत्यावश्यक है।

(106)
बुद्धिमानी

सार्वजनिक समस्या पर चिंता करना मूर्खता है, बचने-बचाने का उपाय सोचना बुद्धिमानी है।

नागनाथ और सांपनाथ या कुआं और खाईं के बीच फंसने पर, लंबा ही सही, बाईपास खोजना बुद्धिमानी है।

बुद्धि बटवृक्ष अवश्य है; किन्तु इसकी भी सीमा है। अतः, प्रयास करके थकने पर, ईश्वर पर विश्वास रखना भी बुद्धिमानी है।

(107)
पूर्ण विश्वसनीय

कई जगह विश्वास करके, कुछ दिन बाद, स्वयं मैंने ही देखा कि मैं विश्वास करने में गलती पर था। तब तक बहुत लोगों को गलत धारणा को बता चुका था। बात बदलने में लज्जा है, न बताने में हानि है। वर्तमान राजनैतिकों के विषय यह समस्या अधिकांश लोगों के सामने है।

इस तरह मैं अपने लिए भी अविश्वसनीय हो गया। अतः आत्म-विश्वास बनाये रखने के लिए पूर्ण विश्वसनीय किसी को न माने, न ही कहें। अंधभक्त न बनें। परीक्षण में रक्खें।

सोना परखे एक बार, पुरुष परखिये बार-बार। सही कहावत है। पूर्ण विश्वसनीय केवल ईश्वर है।

(108)
विश्वव्यापी वर्णव्यवस्था

वर्णव्यवस्था ब्राह्मणों की बनाई नहीं है। यह व्यवस्था मनुष्य में ही नहीं, प्रकृति मे भी वर्तमान, विश्वव्यापी है। ऋषियों ने इसे देखा और मनुष्य के लिए प्रवर्तित किया। ग्रह-नक्षत्र, देवता -दानव आदि अचेतन तथा चेतन सभी श्रेणियों मे चार वर्ण हैं।

इसी तरह दुनियां के विभिन्न देशों में भी चार वर्ण देखे जा सकते हैं। शुद्ध वर्ण, विशेष रूप से ब्राह्मण, दुर्लभ है। क्षत्री व वैश्य वर्णों के स्वभाव अधिकांश

देशों मे हैं। क्षत्री वर्ण मे रूस तथा वैश्य वर्ण मे अमेरिका अधिक प्रतिष्ठित हैं। सहस्त्रों वर्ष के सांस्कृतिक आघात एवं लंबी गुलामी से भारत में शूद्रत्व आ गया है। शूद्रत्व भी निन्दनीय नहीं है किन्तु उसके भी बाहर, दस्युवृत्ति में जाना खतरनाक हो रहा है। यदाकदा, ब्राह्मणत्व और क्षत्रित्व के लक्षण प्रगट होते हैं किन्तु आर्यजाति के वर्चस्व के समाप्त होने के कारण वे स्थिर नहीं रह पाते हैं।

यहां जाति व्यवस्था नहीं, शुद्ध वर्णव्यवस्था की चर्चा की जा रही है। मनुष्य में जन्म, व्यवसाय तथा सामाजीकरण यह तीन तत्व वर्णनिर्धारण को प्रभावित करते हैं। देश के वास्तविक विकास के लिए, वर्णसंकरत्व को रोकते हुए, सभी वर्णों को विकास का अवसर मिलना चाहिए। वर्तमान स्थिति से उबर के वैश्य या क्षत्री वर्ण मे प्रतिष्ठित होने पर भी किसी न किसी दिशा में वास्तविक विकास होगा। ब्राह्मणत्व की प्रतिष्ठा होने पर विचारक, लेखक, अन्वेषक तथा समाज के नायक पैदा होंगे। देश को उच्चवर्ण में प्रतिष्ठित करने के लिए उच्च मूल्यों की प्रतिष्ठा आवश्यक है।

(109)
गुलामी की मानसिकता

भारत की आम जनता बहुत भोली है तथा गुलामी की मानसिकता से ग्रस्त है। प्रबुद्ध लोग उदासीन हैं। जनता के लिए जो भी सत्ता में आ जाय वही पूज्य और प्रशंसनीय हो जाता है। मुसलमान, अंग्रेज, कांग्रेस, भाजपा या चाहे जो, चाहे जैसे, सत्ता में आ जाय, उसी का समर्थन करना लोगों का स्वभाव है। किसी महापुरुष की प्रेरणा से स्वाभिमान जाग्रत होता है तो अल्पकाल में ही समाप्त हो जाता है।

हमारे समाज की इस कमजोरी को जानने वाले ही, अपने तिकड़म से, यहां के लोगों पर निरंकुश शासन कर रहे हैं। स्वतंत्रता की लड़ाई इस हालत को बनाए रखने के लिए नहीं लड़ी गई थी। शहीदों की याद करके हमारे नेताओं के भी आंख में आंसू न आए तो वे धूर्त हैं। इस गुलामी से बचने के लिए अपनी मौलिक सांस्कृतिक चेतना और शिक्षा के द्वारा स्वाभिमान जाग्रत करना पड़ेगा। जनजागरण के द्वारा सत्ता में परिवर्तन करने का छीन लिया गया अधिकार समाज को वापस दिलाना होगा तभी लोकतंत्र की स्थापना होगी।

(110)

एक सबक

यूक्रेन की हालत देखकर यह सबक मिलता है कि चुटकुलेबाजी और झूठे वादे के द्वारा सत्ता लेने वाले जेलेंस्की की तरह अहंकारी और संदिग्ध आचरण वाले व्यक्ति से देश की दुर्गति अवश्यंभावी है क्योंकि मूल स्वभाव जन्मान्तर तक पीछा करता है। दूर-दृष्टि वाला और ऊंचाई पर उड़ता हुआ गिद्ध जमीन पर पड़े डंगर (मरे पशु) को ही देखता है।

अतः विश्वसनीय पर ही विश्वास करे तथा अति विश्वास किसी पर न करे, यही सही नीति है।

(111)

देश का भविष्य

किसी देश का भविष्य उसके धनबल, सैन्यबल, मित्रबल, जन-विश्वास और समर्थन का बल, सत्यनिष्ठ एवं ईमानदार शासन, मूल संस्कृति, शिक्षा और सामाजिक समरसता की स्थिति जैसे आन्तरिक तत्वों तथा अन्तर्राष्ट्रीय संबन्धों मे स्वाभिमान के साथ कूटनीतिक पटुता पर निर्भर करता है।इन तत्वों को दृष्टि मे रखकर, अपने देश की वर्तमान स्थिति में, एक नई, ईमानदार और स्वाभिमानी संगठन का गठन ही विकल्प दिखाई पड़ता है।

(112)

आत्महित और लोकहित

मनुष्य के जीवन में दो उत्कृष्ट उद्देश्य हैं - पहला आत्मकल्याण; दूसरा लोक-कल्याण। निर्विवाद है कि आत्महित सर्वश्रेष्ठ है। प्रथम की साधना का मार्ग प्रशस्त करने के बाद दूसरे को भी साधना चाहिए। घर में दिया जलाने के बाद मंदिर में जलाना फलप्रद होता है। दोनों में विरोध हो तो आत्महित की रक्षा करना उचित है। नीति है –'......आत्मार्थे पृथिवीं त्यजेत'। तिलक, मालवीय जैसे; लोक-सेवकों ने ऐसा ही किया। वे सफलता के लिए धर्ममार्ग से विचलित नहीं हुए। इस मार्ग को छोड़ने वाले लोक का अहित ही करते हैं। सत्य है – "स्वयं असिद्धः कथं परान् साधयति" - अर्थात् जो स्वयं फंसा हुआ है वह दूसरे का उद्धार नहीं कर सकता है। असत्य के सेवक, अनधिकारी, अपने अहंकार की पूर्ति करने वाले, पाखंडी लोग लोक के शत्रु हैं।

आजकल, प्रचार माध्यमों के कारण, लोक को सम्मोहित करना सरल है। भ्रष्टाचारी ही इस कार्य में सफल हो जाते हैं। इस परिस्थिति में, जनता को विश्वसनीय पथप्रदर्शक की आवश्यकता है। अतः सत्यनिष्ठ लोगों को, आत्मकल्याण के साथ ही लोकहित में भी समय और शक्ति लगाने की आवश्यकता है।

(113)
ईश्वर में विश्वास

ईश्वर मे विश्वास होने पर, बिगड़ती परिस्थितियों में भी, आशा बनी रहती है। आशा रहने तक मनुष्य हार नहीं मानता है। शिवसंकल्प है तो पूरा होता है।

तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।।मामनुस्मर युद्ध च।।आदि वाक्य स्मरणीय हैं।

(114)
ब्रह्मास्त्र

जब शत्रुओं की संख्या अधिक हो जाय और वे प्रबल दिखाई पड़ने लगें तो, उन्हें पराजित करने के संकल्प से, अपनी और अपने समुदाय की योग्यता बढ़ानी चाहिए। योग्यता के आधार पर समर्थ होने पर दुष्टों और धूर्तों की सेना स्वतः पराजित हो जाती है। सत्य और नीति पर आधारित होने पर ही योग्यता फलवती होती है।

(115)
क्षमता का सदुपयोग

जिस विषय में स्वाभाविक रुचि और क्षमता हो उसी में व्यक्ति दक्षता प्राप्त कर सकता है। सामान्यतया, अपनी रुचि और दिशा का निर्धारण करने में, बालक सोलह वर्ष के बाद, सक्षम हो जाता है। अनावश्यक हस्तक्षेप से बालक का भविष्य बिगड़ता है।

जहां सज्जन और विद्वान लोग उदासीन हो जाते हैं, वहां दुर्जन और धूर्तों का प्रकोप बढ़ता है। वहां विद्वानों की बुद्धि को पृथ्वी निगल जाती है।

बालकों और वृद्धों के स्वधर्म पर रहने से समाज को संजीवनी देने वाली युवाशक्ति तैयार होती है। निज निज धर्म निरत श्रुति रीती-यही रामराज्य का लक्षण है।

(116)
सांस्कृतिक साम्राज्य

किसी समय विशाल भारतीय सांस्कृतिक साम्राज्य ईरान से पूर्वी द्वीप समूह तथा तिब्बत से लंका तक स्थित था। ऋषियों के चिंतन पर आधारित राजाओं का प्रताप इस साम्राज्य का कारण था। छोटे-छोटे राज्य मे विभिन्न जाति के शासक थे किन्तु सभी एक ही संस्कृति के प्रवर्तक थे।

अब यह साम्राज्य, वर्तमान संकुचित भारत से भी, उच्छिन्न होने के समीप है। इसमे इस्लामी और ईसाई गुलामी के प्रभाव प्रमुख कारण हैं। इन दोनों के प्रभाव की तुलना करने पर पता चलता है कि इस्लामियत की अपेक्षा ईसाइयत ने बहुत अधिक क्षति किया है और अब भी कर रही है।

इस्लाम ने बर्बर और असभ्य तरीके से मंदिरों को तोड़ा तथा तलवार के बल पर धर्मपरिवर्तन कराया। वे हमारी संस्कृति, शिक्षा, सामाजिक व्यवस्था, भाषा आदि को प्रभावित नहीं कर पाए।

ईसाइयत ने चतुर नीतिज्ञ की तरह, हमारे समाज को जाति, सम्प्रदाय, क्षेत्र तथा भाषा के आधार पर परस्पर विरोधी बना दिया। अपने धर्म के प्रचार हेतु सुनियोजित ढ़ंग से धर्म परिवर्तन कराया। स्वदेशी भाषा की जगह अंग्रेजी को स्थापित किया। शिक्षा पद्धति तथा विभिन्न कानूनों से हमारी संस्कृति के स्थान पर अपनी संस्कृति को आरोपित करने की व्यवस्था किया। अंत में देश का विभाजन करके स्थाई शत्रु खड़ा कर दिया। अपनी नीति को लादने के लिए अनाधिकार संविधान निर्माण कराके समानता के अधिकार को समाप्त किया। हमें स्थाई रूप से गुलामी के कुछ चिह्नों को धारण किये रहने की व्यवस्था के साथ प्रच्छन्नरूप से पूर्ण स्वतंत्रता से वंचित किया। स्वतंत्रता संग्राम के सेनानियों के बलिदान को तुच्छ सिद्ध करते हुये, इंडिपेंडेंस आफ इंडिया ऐक्ट के द्वारा, ब्रिटिश संसद की कृपा से स्वतंत्र हुआ भारत अब भी पराधीनता के कुछ चिह्न धारण करता है। अपने पक्षधर लोगों को सत्ता देने की व्यवस्था करके अंग्रेजों ने यहां की संस्कृति को समाप्त करने और यूरोपीय संस्कृति को सुस्थिर करने का प्रबंध किया जिसमें अब भी उत्तरोतर सफलता मिल रही है।

उपर्युक्त तथ्यों को दृष्टि में रखने पर, यह उचित लगता है कि इस्लामी गुलामी की अवधि के गड़े मुर्दे उखाड़ने से बाज आयें। मुसलमानों को भारतीय

समाज के साथ तालमेल बनाने की सोचें। उसमें बन रहे आतंकवादियों और अलगाववादियों के साथ और अधिक सख्ती के साथ कानूनी कार्यवाही करें। उनकी जनसंख्या की वृद्धि पर कानूनी नियंत्रण करें। शक्ति का दुरुपयोग छोड़कर, अब शासन-पद्धति, सामाजिक व्यवस्था, भाषा, संस्कृति, वेश-भूषा, खान-पान, व्यवहार आदि को यूरोपीय प्रभाव से मुक्त करने के लिए राजनैतिक और सामाजिक क्षेत्रों मे संघर्ष करें।यह काम कठिन है क्योंकि सभी राजनेता इससे परहेज करते हैं। इस दिशा मे संघर्ष आरंभ करना सांस्कृतिक ही नहीं वास्तविक राजनैतिक स्वतंत्रता की लड़ाई होगी।

(117)
असंग और अनासक्त

जो मनसा, वाचा, कर्मणा असंग हो जाता है, वह स्वतः अकाम भी हो जाता है। यह स्थिति अहंकार और उसकी जननी अविद्या के नाश के बाद, विवेकख्याति के उदय पर संभव है। ऐसा व्यक्ति जीवन्मुक्त कहा जाता है। असंगता दुस्साध्य है।

अनासक्त होने की साधना से असंगता सुलभ है।राग और द्वेष (शत्रुता और मित्रता) इन दो प्रकारों से संग (संबंध) बनता है। संबधों का निर्वाह, सामान्य व्यक्ति की तरह करते हुए, किसी पक्ष में आसक्त न होकर, स्वधर्म के आधार पर समबुद्धि में स्थिर रहने का प्रयास अनासक्ति की स्थिति पैदा करता है। इसी को गीता मे समत्वयोग कहा गया है – 'समत्वं योगमुच्यते'। इसकी प्राप्ति होने पर असंगता प्राप्त होती है।

(118)
मर्यादा पुरुषोत्तम

रामराज्य की स्थापना के लिए रामबाण आवश्यक है। इन्हीं दोनों मे अतिशय की उपलब्धि की क्षमता होने के कारण राम को मर्यादा पुरुषोत्तम कहते हैं।

राम के बाण ताड़का, सुबाहु, कबन्ध आदि के बध के लिए होना ही हितकर है। घास-फूस खाने वाले हिरण को मारकर उसकी खाल निकालने के काम में उसका संधान अशोभनीय तथा हानिकर रहा है। देखें – न खलु न खलु बाणाः सन्निपात्याःमृगेषु मृदुनि मृदु शरीरे पुष्पराशाविवाग्निः। क्व वत हरिणकानां

जीवितं चाति लोलं, क्व च निशितनिपाताः बज्रासाराः सरास्ते।। कालिदास। समर्थ व्यक्ति के लिए संयम अधिक आवश्यक होता है। बाद में राम ने संयम की शक्ति का भी प्रदर्शन किया।

सत्ता के प्रभाव से भ्रष्ट, शोषक, आतातायी, समाज के शत्रु जैसे दुष्टों के दलन के कार्य उचित हैं। जब अत्याचार, अन्याय, अनीति, कराधान, महंगाई आदि के द्वारा सामान्य जनता को पीड़ा देकर उसकी खाल उधेडने में सत्ता का उपयोग होगा तो बेन, नहुष आदि की गति अवश्यंभावी है।

मर्यादा पुरुषोत्तम की सही प्रतिष्ठा तथा उपासना, छलछिद्र छोड़कर, उनकी जीवनी से शिक्षा और उनके आदर्शों का अनुकरण करना है।

(119)
सबसे बड़ी भूल

मनुष्य की सबसे बड़ी गलती यह है कि वह भगवान को भोला समझकर उन्हें बेवकूफ बनाने का प्रयास करता रहता है। उसे असंभव ही सबसे सरल लगता है। यह पतन का कारण है। ऐसे अल्पज्ञ का भगवान को मानने की अपेक्षा नास्तिक होना ही अच्छा है, क्योंकि, जब किसी कारण से वह ईश्वर में आस्थावान होगा, उसे सत्य का बोध होगा।

आर्त, अर्थार्थी, जिज्ञासु और ज्ञानी चार तरह के ईश्वर के उपासक बताये गए हैं। अर्थार्थी होकर ज्ञानी की तरह प्रदर्शन, ईश्वर की निष्काम सेवा के नाम पर अपने स्वार्थ की सिद्धि आदि पाखंड भी ईश्वर को ठगने का प्रयास है।

मनुष्य को तो कुछ दिनों तक बेवकूफ बनाया जा सकता है। ईश्वर से क्षण भर दुराव संभव नहीं है। धर्म का दोहन अनर्थकारी है।

निर्मल मन जन सो मोहिं पावा।
मोहिं कपट छलछिद्र न भावा।।

सबसे बड़ी गलती करने पर सजा भी सबसे बड़ी मिलेगी। ईश्वरत्व तक पहुंचने के पहले अच्छा मनुष्य बनना ही श्रेयस्कर है।

(120)

विकल्प। अंधभक्तों सावधान!

इसे शायद ही कोई पसंद करे क्योंकि अधिकांश लोग सत्तापक्ष या विपक्ष के अंधभक्त हो गये हैं। तथापि कहना स्वधर्म है।

फ्रांस की क्रांति के इतिहास से वर्तमान भारतीय परिदृश्य की तुलना करने पर यहां भयावह स्थिति उत्पन्न होने का आकलन होता है। सामाजिक और आर्थिक समस्याएं, शोषण तथा अनियंत्रित महंगाई वहां की क्रांति के प्रमुख कारण थे। मजदूर दोपहर तक की मजदूरी लेकर खरीद कर लेता था क्योंकि शाम तक भाव बढ़ सकता था। यहां यह स्थितियां तो हैं ही इससे भी बड़ी समस्यायें उत्पन्न हैं। अनुत्पादक कामों में व्यय, मंदिर और मूर्ति बनवाने तथा मुफ्तखोरी आदि में हमारी आर्थिक स्थिति धरातल पर है, यह विशेषज्ञों का मत है। जातीय एवं साम्प्रदायिक वर्ग-संघर्ष आन्तरिक सुरक्षा के लिए घातक हो चले हैं। अतः वाह्य संघर्ष के समय हमें बहुत कुछ गंवाना पड़ सकता है।

सत्तापक्ष के वर्तमान निरंकुश आचरण को रोकने में दूर तक कोई सक्षम नहीं दिखाई पड़ रहा है। समर्थ विपक्ष नितांत आवश्यक है। कांग्रेस पार्टी परिवार की संपत्ति बनकर, राहु की तरह शीर्षविहीन है। सत्तापक्ष राजमद से ग्रस्त है। अतः विपक्ष को ही देशहित में कुछ सुझाव दिये जा सकते हैं।

कांग्रेस से अलग हुए टीएमसी आदि दल तथा अन्य इच्छुक दल पुनः एक होने की वार्ता करें और सभी को मिलाकर, चुनाव द्वारा दल का शीर्षभाग गठित हो तो सक्षम विपक्ष तैयार हो सकता है। विकल्प के अभाव को समाप्त करने पर देश का आसन्न संकट दूर हो सकता है।

(121)

ब्राह्मणत्व का स्वभाव

वर्णसंकरत्व से बचने के लिये ब्राह्मणत्व की ही सहायता लेनी होगी। सत्य के सरल मार्ग पर दृढ़ रहकर सब को उचित आदर देना, प्रदर्शन व सम्मान की उपेक्षा करना, ईर्ष्या-द्वेष का त्याग, सब का हितैषी बनना आदि ब्राह्मण के ऐसे गुण हैं जिनके होने पर सभी मित्र हो सकते हैं। इससे ब्राह्मणत्व के प्रति आदरभाव पैदा होगा। पवित्र जीवन जीने मे बाधा नहीं होगी।

ब्राह्मणत्व के प्रतिष्ठित होने पर वर्णव्यवस्था प्रतिष्ठित हो जायेगी। तब शास्त्रों की सुरक्षा होगी और संस्कृति भी सुरक्षित रहेगी। अल्पसंख्या मे भी ब्राह्मण होने पर भारत पुनः जगद्गुरु बनने की दिशा में चल पड़ेगा।

इस योजना में शासन का इतना ही सहयोग पर्याप्त है कि कोई मिथ्याचारी विरोध न करने पाए।

(121ख)
कर्मों का लेखाजोखा

मनुष्य के करनी का लेखा-जोखा ईश्वरीय कम्प्यूटर में तत्काल होता रहता है। अपने कृताकृत का सम्मिलित परिणाम वह मृत्यु के समय स्वयं जान लेता है तथा अन्तर्यामी के निर्णय को स्वीकार करके तदनुसार अग्रिम यात्रा पर जाता है। यह अदृश्य का विधान है, जो निर्विवाद है।

लोक में किसी व्यक्ति के कर्मों का सही लेखा-जोखा होना कठिन है। पाखंड को समझने में गलती होने या अपनों के लिये पक्षपात और दुराग्रह होने के कारण, मनगढ़ंत लेखा-जोखा प्रचारित करने की प्रबल संभावना होती है। अतः इतिहास ही नहीं इतिहास्ति के ज्ञान भी अविश्वसनीय हो जाते हैं।

बहुमान्य व्यक्ति के स्पष्ट अपराध और गलत निर्णय या आचरण को भी सही सिद्ध करने के लिए, उसे देवदूत या अवतार सिद्ध करने की भी प्रथा है। समरथ के नहिं दोष गुसाईं - कहकर उनकी गलती क्षम्य हो जाती है। यह निर्णय विवादग्रस्त होता है जिसके शिकार सामान्य लोग हो जाते हैं।

शास्त्रीय विधि से, तर्कसंगत विचार करने वाले के लिए विवाद ग्रस्तता की संभावना नहीं रहती है। वह सत्य को जानता है। यह अवश्य है कि अंधभक्तों और स्वार्थांधो को वह भी तत्काल समझा नहीं सकता है। बहुत समय बाद, परिस्थितियों के बदलने पर ही सत्य का ज्ञान होपाता है जिससे सही शिक्षा मिलती है।

जिस ज्ञान के लिए सहस्त्राब्दियों तक प्रतीक्षा करनी पड़ती है वह ज्ञान स्वधर्म मे निरत, शास्त्रीय विधि से चिंतन करनेवाले व्यक्ति में विश्वास करने, उसकी उपासना से तत्काल मिलजाता है। अतः "।।सुध्युपास्यः।।"

(122)
स्वानुभूति

आनंद या सुख के नाम से अभिहित मूल्य के लिए मनुष्य आतुर रहता है। किन्तु यह तो हमारे सहज स्वभाव मे ही उपलब्ध है। कस्तूरी की सुगंध से मृग की जैसी दशा सबकी है। शास्त्रों द्वारा बताए गये चिंतन और आचरण से दुखों के कारणों को निर्मूल करते ही, अपना आनंदमय स्वरुप प्रगट हो सकता है। सहज स्वरूप की विस्मृति ही दुख है।

तब शिव सहज स्वरूप संभारा।
लागि समाधि अखंड अपारा।।

(123)
जयंती समारोह

कल परशुराम जयंती, बड़े उत्साह से, व्यापक स्तर पर मनाई गई। अखबार मे पढ़कर कई तरह के विचार उत्पन्न हुए। भगवान परशुराम ब्राह्मण के उग्र स्वरूप के प्रतीक हैं जो निरंकुश शासक को अनुशासित करने के लिए अवतरित हुये थे। वर्तमान समय में, सामाजिक स्तर पर लोकनीति की प्रतिष्ठा हेतु, सार्वजनिक सहभागिता के साथ किसी राजनैतिक दल के हस्तक्षेप से मुक्त रहकर ऐसी जयंती बहुत महत्वपूर्ण होगी।

ऋषियों, आचार्यों, सन्तों, बलिदानियों तथा अनेक क्षेत्रों के महापुरुषों की जयंती मनाने का उद्देश्य जनचेतना, बालकों को शिक्षा, सामाजिक संगठन आदि के द्वारा लोकनीति की प्रतिष्ठा एवं सत्य तथा न्याय के लिए समर्पण की भावना पैदा करने के लिए होना बहुत उपयोगी है। जयंती के द्वारा वर्ग विशेष या कोई राजनैतिक दल लाभ लेने का प्रयास करे तो वह महापुरुष भी विवादित व अमर्यादित बना दिया जाता है। वह सब का आदर्श नहीं रह जाता है। इससे लोकनीति को हानि और सामाजिक विघटन होता है। जयंती को भी प्रचारतंत्र का माध्यम बनाना निन्दनीय है।

ऐसी जयंती संक्षेप में ही, वास्तविक श्रद्धायुक्त लोग ही मनायें तो भी कुछ लाभ होगा।

(124)
गुरु समर्पण

अद्य आद्यशंकराचार्यस्य जयंती अवसरे--

मौनव्याख्या प्रकटित परब्रह्मतत्वं युवानं। वर्षिष्ठान्तेवसदृषिगणैरावृतं ब्रह्मनिष्ठम्।। आचार्येन्द्रं करकलितचिन्मुद्रमानन्दमूर्तिम्। स्वात्मारामं मुदितवदनं दक्षिणामूर्तिमीडे।।

स्मरणात् पावयितुं क्षमं शंकरं शंकराचार्यं सर्वोपकारिणं शरीरधारिज्ञानस्वरूपिणं साक्षात् दक्षिणामूर्तिं परमगुरुं यथाबलं प्रणतोस्मि ।

(125)
विजय दिवस – पंद्रह अगस्त

रूस ने नौ मई को विजय दिवस मनाया। इस प्रसारित खबर से हमें अपने यहाँ विजय दिवस मनाने के विषय में सोचने की प्रेरणा मिली। लगभग बारह सौ वर्षों से, देश के विभिन्न भागों मे विदेशियों का शासन रहा। इस अवधि में भी बहुत से सपूत, उन्हें पराजित करने के लिए लड़ते रहे। आंशिक रूप में पराजित भी करते रहे। अंग्रेजों से लड़ाई का लंबा इतिहास है, हमारी लड़ाई अनवरत चलती रही। अंत में बलिदानियों के भय से विदेशियों को भागना पड़ा। पन्द्रह अगस्त 1947 का दिन, किसी की कृपा से मिली स्वतंत्रता के रूप में नहीं, संग्राम में मिली विजय की स्मृति में मनाना देश के लिए गौरव की बात होगी।

स्वतंत्रता दिवस कहने पर मानसिक परतंत्रता की पृष्ठभूमि याद आती है, जो पूर्णरूप से कभी नहीं रही है। विजय दिवस मनाने पर स्वाभिमान जाग्रत होगा।

(126)
अनेकता में एकता

बहुत समय से विचारक लोग लिखते रहे हैं कि भारत ऐसा देश है जहाँ अनेकता में एकता पाई जाती है। जलवायु, खानपान, रहनसहन, व्यवसाय, भाषा, सम्प्रदाय, उपासना, संस्कृति आदि अनेक नियामक तत्वों में अनेकता होने पर भी यहां का वृहत् समाज दो बातों में एकता रखता रहा है। प्रथम - वेद और तदाधारित तथा यथासमय ऋषियों द्वारा संशोधित धर्मशास्त्र ही धर्माचरण मे निर्णायक माने जाते थे। द्वितीय - धर्मप्राण भारतीय संस्कृति का ही प्रवर्तन पूरे

देश में तथा दूर तक होता था।राजा चाहे जो हो, बौद्धादि भी, ऐसा ही करते थे। यह तत्व ही इस देश को एकसूत्र मे बांधते रहे हैं। गुलामी की अवधि में भी ऐसा ही रहा है।

देश को स्वतंत्रता देने के पहले से ही, योजनाबद्ध रूप से, अंग्रेजों ने एकता के सूत्र को छिन्न-भिन्न करने का प्रबंध कर दिया। फलतः अपने धर्मशास्त्र, संस्कृति तथा जीवन के मूल्यों को बदलने के कानून बनाए गये, शिक्षा में परिवर्तन से तथा पाश्चात्य संस्कृति को विभिन्न माध्यमों से प्रचारित करने वाले कार्यक्रमों से, एकता का सूत्र अप्रभावी हो चला है। अब धर्म और संस्कृति रूपी प्राण की उपेक्षा करते हुए, उनके बाह्य ढांचे का ही पोषण और प्रचार चल रहा है।यह चिंता का विषय है।

आवश्यकता है कि हम अपनी मौलिक शक्ति को पहचाने तथा प्रदर्शन छोड़कर, संस्कृति और उसके अनुरूप कानूनों के द्वारा अपनी निजी पहचान तथा पुनः जगद्गुरु बनने की क्षमता का प्रदर्शन करें। स्वदेशी तथा वैश्विक अनेकता में एकता को प्रतिष्ठित करके हम सहज रूप में विश्वगुरु बन सकते हैं।

(127)

भारतीय संस्कृति और ब्राह्मणत्व

आचार्य शंकर ने गीताभाष्य की भूमिका में लिखा है की ब्राह्मणत्व के सुरक्षित रहने पर ही वैदिक धर्म और संस्कृति सुरक्षित रह सकते हैं। जातिमात्र के आचारहीन ब्राह्मण की उपेक्षा करने से कोई क्षति नहीं है किन्तु ब्राह्मणत्व और जाति के कारण ब्राह्मण की उपेक्षा और उनका सुनियोजित विरोध करना भारतीय संस्कृति व समाज का ही विरोध है। ब्राह्मणत्व की शिक्षा देने वाले आर्ष ग्रंथों की अवमानना, उन्हें जला देना आदि भी संस्कृति का विरोध ही है। ब्राह्मण या संतपरम्परा द्वारा होने योग्य देवालय का शिलान्यास, अनुष्ठान, यज्ञादि का शुभारंभ जैसे कार्य जिनमें स्वच्छता के साथ ही पवित्रता, पात्रता, वेशभूषा आदि का विधान है, उन्हीं सुपात्रों द्वारा होना संस्कृति के सुरक्षा का आवश्यक अंग है। बहुत समय से तथा वर्तमान में भी विभिन्न कानूनों तथा व्यवहार से ब्राह्मणत्व, वैदिक धर्म और संस्कृति का स्पष्ट विरोध हो रहा है जबकि भारतीय संस्कृति के संवर्धन का प्रचार किया जाता है। कथनी-करनी में पाखंड स्पष्ट है।

संस्कृति को संजीवनी देकर ही देश की सुरक्षा, सामाजिक समरसता, आंतरिक कानून और व्यवस्था, स्वभिमान आदि से समन्वित विकास संभव है। इसी से हम शक्तिसंपन्न तथा आत्मनिर्भर बनेंगे।

(128)

पर्यावरण दिवस

पर्यावरण के प्रदूषण की समस्या विश्वव्यापी है। परस्पर बधाई देने के लिए नहीं, प्रदूषण से मुक्ति हेतु उपाय करने के लिए स्मरण दिलाने में इस दिन का उपयोग है। जनसंख्या की वृद्धि, औद्योगीकरण, वनों का काटना जलस्रोतों का शोषण आदि कारणों से निपटने के लिए सभी देश प्रयास कर रहे हैं। समस्या की जड़ को कमजोर करने के लिये दो उपाय नीचे लिखे जा रहे हैं।

प्रथम - बड़े लोगों द्वारा भी, व्यवहार में असत्य का अत्यधिक प्रयोग करने पर सूर्य और चन्द्र की रश्मियां प्रदूषित होजाती हैं। इससे प्राकृतिक पदार्थ तथा मनुष्य का स्वभाव, दोनों प्रदूषित हो जाते हैं। ऐसा चरक संहिता के जनपदोध्वंस प्रकरण मे लिखा है। अतः सत्य का आश्रय लें।

द्वितीय - उपयोगितावादी संस्कृति के कारण उत्पादन को अधिकतम करने व जीडीपी बढ़ाने की प्रतिस्पर्धा चल रही है। इसके लिए प्राकृतिक तत्वों का शोषण भी अधिकतम हो रहा है। यह प्रदूषण का बहुत बड़ा कारण है। भारतीय संस्कृति से शिक्षा लेकर, अपनी आवश्यकताओं को कम से कम करने व थोड़े में ही सुखी व संतुष्ट रहकर काम चलाने में मानसिक और प्राकृतिक दोनों प्रदूषण नियंत्रित हो सकते हैं। नीति है - एतदेवाति पाण्डित्यं यदल्पेन कार्यसाधनम्।। इससे प्रकृति का अनावश्यक दोहन बन्द होगा। मानसिक और पर्यावरणीय, दोनों प्रदूषण परस्पर संबद्ध हैं। जगद्गुरु भारत देश का कर्तव्य है कि वह अपना मानसिक प्रदूषण नियंत्रित करे और विश्व में भी अपना ज्ञान व अनुभव प्रसारित करे। हमारी संस्कृति मे मानव जाति की प्रत्येक समस्या का निदान है।

(129)

मुक्तिमंत्र

पर्यावरण के आधारभूत पंचतत्व (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश) तथा इनके संयोग से उत्पन्न चराचर जगत, सब के प्रदूषित हो जाने पर, तमोगुणी

सृष्टि का होना स्वाभाविक परिणाम है। जैसी; मिट्टी होगी वैसे ही गुणोंवाला घड़ा. बनेगा। फरइ कि कोदों बालि सुसाली। मुक्ता प्रसव कि संबुक ताली।। वर्तमान में, समस्त सृष्टि, संस्कृति को तिरस्कृत करके, प्राकृत अवस्था में जाने को उद्यत है। इसके लिए मानव ही उत्तरदायी है। स्वार्थ और अहंकार से ग्रस्त मानव समाज को, विवेक जाग्रत करके, बचाने का एकमात्र उपाय निम्नलिखित है-

अपनी प्राचीन संस्कृति में उपलब्ध ऋषियों और ब्राह्मणों के आचार, तपस्या, सामर्थ्य, त्याग, बलिदान, अन्तर्दृष्टि, ज्ञान आदि को देश में तथा विश्वपटल पर प्रकाशित किया जाय। सृष्टिकर्ता के नियंत्रण में ही प्रकृति का व्यापार चलता है। हम सात्विकता को अपनाकर, ईश्वर की ओर मुंह करके चल पडें तो सारी परिस्तिथियां अनुकूल हो जायेंगी। भौतिक विज्ञान नहीं, सत्यनिष्ठा से, वैदिक विज्ञान के प्रयोग से हम अपना तथा समस्त मानव समाज का उद्धार करके, विश्वगुरु बन सकते हैं।

(130)
पंचकोष

मिलना हो अब ही मिलो कहत कबीरा राम।
लोहा जब मिट्टी भया पारस का क्या काम।।

एक मित्र द्वारा उल्लिखित कबीर के इस दोहे को पढ़कर उपनिषद का मंत्र याद आया--इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति, नो चेदवेदीत् महती विनष्टिः।

लोक में भी मिलती -जुलती उक्ति है - जियत हंसी जो जगत में मुये मकुति केहि काम। इन उक्तियों का अभिप्राय है कि साधना का फल जीवनकाल में प्रत्यक्ष होना चाहिए।

इन तीनों उक्तियों में अब, इह और जियत इन तीनों शब्दों का अर्थ है शरीर के जीवित रहने की अवस्था में। शरीर को ही जीव का अन्नमय कोष कहा गया है। तैत्तिरीय उपनिषद में जीव के लिए विहित पंचकोषों का विशद् वर्णन है। पंचकोष हैं - अन्नमय कोष, प्राणमय कोष, मनोमय कोष, विज्ञानमय कोष और आनंदमय कोष। पूर्ण विकसित जीव, अच्छे चिंतकों, को इन पांचों कोषों की अनुभूति होती है।यह जीव केलिए उत्तरोत्तर विकसित कोटि के आवास हैं।

संसार में जीने के लिए इन पंचकोषों की स्थिति अन्नमय कोष के रहने पर

ही संभव है। सभी चार प्रकार के जीवों को यह कोष उपलब्ध है। इसी से साधना करके अन्य कोषों के अनुभूति की योज्ञता मिलती है। जिस कोष तक की सिद्धि एक जन्म में होती है उसके आगे की साधना हेतु पुनर्जन्म होता है। *शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्। तनु बिनु वेद भजन नहिं बरना।* शरीर के रहते हुए ही, सभी कोषों का अतिक्रमण करके, आनंदमय कोष में अवस्थित होकर, जीव आत्मानुभूति करता है। इसके बाद प्रारब्धवश शरीर धारण किये रहने पर, जीवन्मुक्त की अवस्था भी संभव है।

स्पष्ट है कि शरीर ईश्वर की बहुत उपयोगी देन है। केवल इसी को, भोग के लिए, सब कुछ समझने पर अधोपतन होता है और इसे मुक्ति का द्वार समझने पर, पंचकोष की साधना से, परम लक्ष्य की प्राप्ति होती है।

'साधन धाम मोक्ष कर द्वारा। पाइ न जो परलोक संवारा।। सो परत्र दुख पावइ सिर धुनिधुनि पछताइ। कालहिं कर्महिं ईश्वरहिं मिथ्या दोष लगाइ।।' -तुलसीदास।

(131)
वर्तमान में कितना सही?

किष्किंधा कांड-

हरित भूमि त्रृणसंकुल समुझि परइ नहिं पंथ।
जिमि पाखंड विवाद से
लुप्त होहिं सदग्रंथ।।

उत्तर कांड-

कलिमल ग्रसे धर्म सब
लुप्त भये सदग्रंथ।
दंभिन निजमति कल्पिकर
प्रगट किये बहु पंथ।।
मारग सोइ जाकहं जोइ भावि।
पंडित सोइ जो गाल बजावा।।
जाके नख अरु जटा विसाला।

सोइ तापस प्रसिध्द कलिकाला।।
गुर सिख बधिर अंध कल लेखा।
एक न सुनइ एक नहिं देखा।।
मातुपिता बालकन बोलावहिं।
उदर भरइ सोइ पाठ पढ़ावहिं।।
तपसी धनवंत दरिद्र गृही।
कलिकौतुक तात न जात कही।।
नृप पाप परायन धर्म नहीं।
करि दंडविदंड प्रजा नितही।।

कलिकाल में करणीय--

कलिकर एक पुनीत प्रतापा।
मानस पुन्य होइ नहिं पापा।

अतः-मन से बुरे विचारों, परनिंदा के चिंतन को हटायें। येन-केन विधि दीन्हें दान करे कल्याण। अतः-यथाशक्ति दान दें। अनावश्यक संग्रह की प्रवृत्ति का त्याग करें।।

(132)
धर्मदण्ड

'धर्म एव हतो हन्ति, धर्मो रक्षति रक्षितः।' अर्थात् धर्म की रक्षा करें तो वह हमारा रक्षक होता है और उसका हनन करें तो वही हमारा भक्षक बन जाता है। धर्म दण्ड सबके सिर पर रहता है।

लोक में, सामान्य लोगों द्वारा धर्म का पालन कराने और विपरीत जाने पर दंडित करने के लिए धर्म का ही प्रतिनिधि राजा या शासक होता है। राजा लौकिक दृष्टि से निरंकुश होता है किन्तु धर्मदण्ड का अनुशासन उसके ऊपर भी होता है। यह हमारे शास्त्रों की मान्यता है।

यहां धर्म शब्द, व्यक्ति के लिए, आचार व व्यवहार में पवित्रता, आत्मवत्सर्वभूतेषु आदि मानवीय गुणों से है। शासन के लिए, पंथनिरपेक्ष रहकर समाज मे शान्ति-व्यवस्था की स्थापना, देश व राष्ट्र की अस्मिता तथा संस्कृति की रक्षा, सत्य व न्याय की प्रतिष्ठा, समानता-स्वतंत्रता आदि सार्वजनिक मौलिक

अधिकारों की पूर्ण सुरक्षा के रूप में राजधर्म का निर्वाह करना है।

भारत मे सभी राजा स्मृतियों के अनुसार राजधर्म का पालन करते थे। स्वतंत्रता के पूर्व, राजधर्म का निर्धारण करने के लिये मनीषियों द्वारा रचित स्मृतियां ही अधिकांश सामाजिक व्यवस्था के लिए मान्य थीं। अब सारी व्यवस्था बदलती चली जा रही है। चुने हुए प्रतिनिधि ही ऋषि मान्य लिए गये हैं जबकि चुनाव मे जिताऊ उम्मीदवार कैसा होता है, यह सर्वविदित है। इसमें बदलाव होना चाहिए।

ऐसी परिस्थिति मे भी शासन के अंगों द्वारा निर्धारित मानदंडों को स्वयं स्वीकार करने पर, कुछ विश्वसनीयता बन सकती है। विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका अपनी सीमा मे ही रहें। स्वार्थ और अभिमान में कोई दूसरे की सीमा का अतिक्रमण न करे। शीघ्रता में और वर्चस्व के प्रदर्शन हेतु अनैतिक उपाय का प्रयोग दूसरे के क्षेत्र में स्पष्ट अतिक्रमण है। अपने बनाये कानून और नियम स्वयं सरकार नहीं मानेगी तो जनता भी वही करेगी। इससे अराजकता का भय उपस्थित होगा। अतः, धर्मदण्ड का स्मरण सबको लाभकारी है। इससे न डरने पर अग्रिम व्यवस्था यमदण्ड है-

'गुरुः आत्मवतां शास्ता राजा शास्ता दुरात्मनाम्। अन्तः प्रच्छन्न पापानां शास्ता वैवस्वतो यमः।।'

(133)
पितृ दिवस

पिता सुपुत्र की कामना करता है जिसका लक्षणा है--

धन्य जनम जगती तल तासू।
पितहिं प्रमोद चरित सुनि जासू।।

(134)
योग दिवस

अपने यहां छः वैदिक दर्शन हैं। सभी जीवन के उच्चतम मूल्यों को प्राप्त कराने के लिए हैं। इनमें से एक योग है जिसे सेश्वर सांख्य भी कहा जाता है। इसका आधारग्रन्थ पातंजल योगशास्त्र है। इसके अन्तिम अध्याय, कैवल्यपाद में विवेकख्याति और उसके उपरांत कैवल्य को जीवन का चरम उद्देश्य बताया गया

है। ग्रंथ के प्रथम समाधिपाद अध्याय मे चित्तवृत्तियों के पूर्ण निरोध से होने वाली निर्वीज समाधि का प्रतिपादन है। चित्तवृत्तियों के निरोध के लिए ही अष्टांग योग है। योगशास्त्र का प्रथम सूत्र है – 'योगः चित्तवृत्ति निरोधः।' चित्तवृत्तियों का निरोध और उससे निर्वीज समाधि ही साध्य नहीं है। यह साधन हैं। साध्य तो विवेकख्याति और उसके उपरांत प्राप्य कैवल्य ही है।

अनेक प्रकार के योग प्रचलित हैं। इन सब का उपकारक अष्टांग योग है जिसे आगे बताया जायेगा। योग के आठ अंग हैं - यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान समाधि। इनमें से प्रथम पांच को बहिरंग तथा अंतिम तीन को अन्तरंग कहा जाता है। धारणा, ध्यान और समाधि की साधना, विशेषरूप से, योगदर्शन के अनुयायियों के लिए है। यम, नियम, आसन, प्राणायाम व प्रत्याहार दैवी संपदा के इच्छुक, प्रत्येक मानव के लिए विहित हैं। दैवी और आसुरी दो प्रकृति के मनुष्य होते हैं। जो आसुरी प्रकृति के हैं वे भी आसन और प्राणायाम को अनिवार्य समझते हैं।

आसान से शारीरिक हित और उससे होने वाले कार्य सिद्ध होते हैं। प्राणायाम से बलिष्ठ प्राण एवं मन की एकाग्रता सिद्ध तो है। प्राण और मन एक-दूसरे संबद्ध हैं। 'प्राणायामः परं तपः' कहा गया है। इससे अपार मनोबल मिलता है। आसुरी प्रकृति के लोग असु (प्राण) की उपासना मात्र से अजेय हो जाते हैं। ऐसे असंस्कारी लोग समाज के लिए समस्या बन जाते हैं।

आसुरी स्वभाव से बचने और दैवी स्वभाव को पाने के लिये, यम और नियम आवश्यक हैं। इन दोनों प्राथमिक अंगों की साधना सबसे महत्वपूर्ण है। यम की साधना से मनुष्य दूसरों के लिए कष्टकर नहीं रहकर व्यवहार में विश्वसनीय तथा ऊर्ध्वरेता बनता है। नियम के पालन से मनुष्य व्यक्तिगत आचरण मे समाज के लिए आदर्श तथा स्वयं पवित्र रहता है। इन तीनों की साधना होने पर ही प्रत्याहार की क्रिया संभव है। प्रत्याहार की साधना से त्याग, वैराग्य का स्वभाव और ब्राह्मणत्व का आधन किसी प्राणी में हो सकता है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि योग के पांचों बहिरंग की समन्वित साधना मानवता के लिए उपयोगी है। भारतीय मेधा और साधना का प्रचार विश्व में करना, अपने गौरव में वृद्धि के साथ, विश्वकल्याण के लिए है। वर्तमान में केवल

आसन और प्राणायाम को ही योग के रूप में प्रचारित किया जा रहा है। यह बाह्य कलेवर का प्रदर्शन और व्यवसायिक पक्ष का प्रचारमात्र है। इससे हानि भी संभव है। अपनी पहचान बनाए रखने तथा भारतीय मेधा की प्रतिष्ठा हेतु, आज यम-नियम के साथ पंचाग योग का प्रदर्शन व प्रचार उचित है। विश्व के कल्याण में इस शास्त्र का प्रयोग करके हम जगद्गुरु बन सकते हैं।

(135)
दैवी और आसुरी प्रकृति

गीता के सोलहवें अध्याय में दैवी और आसुरी दो विपरीत प्रकृतियों के व्यक्तियों का वर्णन है। उनका थोड़ा परिचय नीचे है--

दैवी प्रकृति-

अभयं सत्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोग- व्यवस्थितिः।
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम्।।
अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम्।
दया भूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीरचापलम्।।
तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहो-नातिमानिता।
भवन्ति सम्पदं दैवीमभिजातस्य भारत।।

आसुरी प्रकृति-

दम्भोदर्पोभिमानश्च क्रोधः पारुष्यमेव च।
अज्ञानं चाभिजातस्य पार्थ सम्पदमासुरीम्।।
प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च जना न विदुरासुराः।
न शौचं नापि चाचारो न सत्यं तेषु विद्यते।। इत्यादि।

इन दोनों प्रवृत्तियों का फल भी एक-दूसरे के विपरीत होता है। यही लिखा है- 'दैवी सम्पद्विक्ताय निबद्धायासुरी मता।' इस पूरे वर्णन का तात्पर्य यह है कि -

दैवी प्रकृति के लोगों में निर्भयता, मन की निर्मलता, ज्ञानयोग में दृढता, दान, दम, यज्ञ, स्वाध्याय, तप, सरलता, अहिंसा, सत्य, अक्रोध, निन्दा न करना, दया, निर्लोभत्व, मृदुता, समाज से लज्जा करना, शांतभाव, तेज, क्षमा, धैर्य, शुद्धता, अविरोध और जो सबसे महत्वपूर्ण है वह अहंकार का अभाव, यह सब गुण स्वभावतः होते हैं।

आसुरी प्रकृति के लोगों में अभिमान तथा उसी के व्यावहारिक स्वरूप दर्प व दम्भ, क्रोध, कठोरता, अग्यान, अनाचार, तथा असत्य, पाखंड आदि अनेक दुर्गुण होते हैं। इसके साथ ही विवेक (कर्तव्याकर्तव्य के ग्यान) से रहित होकर वे अनेक तरह से समाज के लिए कंटक का काम करते हैं। ऐसे लोग स्वयं जन्मांतर तक दुखी रहने के लिए बाध्य हो जाते हैं। इनके हाथ में सत्ता आ जाने पर, रावण आदि की तरह, यह समाज के लिए अत्यंत कष्टकर होते हैं।

इन लक्षणों तथा उनके परिणाम को जानकर, हम दैवी संपदा का वातावरण बनाने व स्वयं उसको प्राप्त करने के लिए यत्न करें।

(136)

गीता में गोता

गीता की गंगा में गोता लगाने के अनेक फल हैं। इस शास्त्र में कर्मयोग, भक्तियोग और ज्ञानयोग का निरूपण तथा उनको सुदृढ़ करने के लिए, वर्णाश्रम व्यवस्था के कर्तव्यों का भी वर्णन किया गया है। स्वधर्म का पालन, अनासक्त कर्मयोग तथा प्रकृति, जीव और ईश्वर का स्वरूप यह निरूपण के मुख्य विषय हैं जो विविध प्रकार से उपदिष्ट हैं। जीव, जगत और ईश्वर यही विषय चार अध्यायों में प्रतिपादित हैं। इन अध्यायों पर विद्वानों का ध्यान आकृष्ट किया जा रहा है।

सातवें अध्याय के श्लोक 7/4 में परा और अपरा प्रकृति के रूप में जगत और जीव का तथा श्लोक 7/6 मे ईश्वर का स्वरूप बताया गया है।

आठवें अध्याय के श्लोक 8/4 में अधिभूत, अधिदैव और अधियज्ञ के रूप में जगत, जीव और ईश्वर का स्वरूप बताया गया है।

अध्याय तेरह के श्लोक 13/1 में क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ तथा श्लोक 13/27 व 13/33 में परमेश्वर के रूप में जगत, जीव और ईश्वर का स्वरूप बताया गया है।

अध्याय पन्द्रह के श्लोक 15/16 में क्षर और अक्षर तथा श्लोक 15/17 मे पुरुषोत्तम के रूप में जगत, जीव और ईश्वर के स्वरूप प्रतिपादित हैं।

इन चारों अध्यायों में जगत को जड़, जीव को चेतन कूटस्थ तथा ईश्वर को सर्वातिशायी व्यापक तत्व बताया गया है। 'एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति', यह

वेदवाक्य है। गीता में रहस्य के ज्ञान के लिए महत्वपूर्ण विषय के तत्वज्ञान को अनेकधा समझाया गया है। यह शास्त्रीय परम्परा पहले से रही है।

(137)
आत्मनिरीक्षण

किसी देश के विकास और शान्ति-व्यवस्था के लिए कुछ तत्वों का होना आवश्यक है। इनके अनुसार भविष्य का आकलन संभव है।

प्रथम - शासन-सत्ता में जनता का विश्वास होना चाहिए। ऐसा न होने पर शासन के प्रत्येक आदेश का विरोध होने लगता है। राजकीय संपत्ति की क्षति जनता करने लगती है। ऐसी स्थिति में, दोनों पक्षों में विवेक उत्पन्न करने के लिए, सत्तापक्ष को ही पहल करनी पड़ेगी। सारे राजनैतिक दलों के अविश्वसनीय होजाने पर देश का भविष्य अंधकार मे चला जाता है। कोई तो दलहित छोड़कर देशहित का ख्याल करे। विश्वास पैदा करने केलिए सत्य व न्याय (दण्ड) की प्रतिष्ठा चाहिए।

द्वितीय- मनुष्य के मनोविज्ञान की उपेक्षा न करते हुए, पूजा, सम्मान, पद-प्रतिष्ठा आदि मे योग्यता को वरीयता देनी पड़ती है। ऐसा न करने पर कुण्ठग्रस्त समुदाय का विरोधी या उदासीन हो जाना संभव है।

तृतीय- भ्रष्टाचार और अत्याचार रोकने के लिये शीर्षस्थ लोगों पर नियंत्रण हो। नीचे के लोग भयवश स्वतः ठीक हो जाते हैं। नीचे से ठीक करने का प्रयास दिखावा मात्र है।

चतुर्थ- राजकोष की स्थिति और राजकीय कार्यक्रमों मे सामंजस्य हो। इसके लिए कराधान और महंगाई का भार जनता पर लादने पर स्थिति विपरीत होती है।

पंचम- राजनीति को लोकनीति के क्षेत्र में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। लोकनीति जितनी ही स्वतंत्र और सशक्त होगी संस्कृति उतनी ही सुरक्षित रहेगी। तब शासन भी उतना ही सफल रहेगा।

देशहित को सर्वोपरि समझने पर उपर्युक्त सिद्धान्त तथा अनेक अन्य सहायक तत्व उपस्थित हो जायेंगे।

(138)
समाज का शीर्षासन

मनु भगवान नें लिखा है-

सर्वं वै ब्राह्मणस्येदं यत्किंचिज्जगतीगतम्।
श्रेष्ठ्येनाभिजनेनेदं सर्वं वै ब्राह्मणऽर्हति।। 1/100मनुस्मृति

स्वमेव ब्राह्मणो भुङ्क्ते स्वं वस्ते स्वं ददाति च।
आनृशंस्याद् ब्राह्मणस्य भुञ्जन्ते हीतरे जनाः।। 1/101मनुस्मृति

अर्थात पृथ्वी की सारी वस्तुओं का स्वामी ब्राह्मण है। उसके प्रसाद का उपभोग अन्य लोग करते हैं।

ब्राह्मण त्यागी और तपस्वी था तो यह मान्यता रही है। उस समय समाज अपने पैरों पर खड़ा था। विकार होने पर मान्यताएं बदल गईं। ब्राह्मणवाद का विरोध महाभारत काल के बाद से ही शुरू होगया था किन्तु दसवीं शताब्दी तक उसका महत्व बना रहा। भक्ति सम्प्रदायों के प्रचार से ब्राह्मणत्व का स्थान सगुण साकार या अशास्त्रीय निर्गुण भक्ति ने ले लिया। फिर भी वर्णसंकरत्व के विरोधी जातिवाद के प्रभाव से ब्राह्मणों का वर्चस्व रहता था।

जातिवादी व्यवस्था का विरोध होने से सनातनी हिन्दुओं मे विघटन होरहा था तब आर्य समाज की स्थापना से वैदिक व्यवस्था को नया रूप देने का प्रयास किया गया। यह सामयिक आवश्यकता थी किन्तु इसमें वैदिक कर्मकांड और औपनिषदिक ज्ञानकांड के रहस्यों की सर्वथा अवहेलना हो गई। पितर, देवता, ऋषि तथा पंचयज्ञ आदि का महत्व हिन्दू नहीं भूल सकता है। केवल शाब्दिक और तार्किक आधार पर आर्यसमाज की धार्मिक व्यवस्था सबके लिए स्वीकार्य नहीं रह गई। फिर भी ब्राह्मणत्व पदच्युत हुआ और सम्पूर्ण समाज पैरों पर खड़ा न रह कर धराशायी हो गया।

अब, अन्तिम चरण में सारी मान्यताएं उलटी हैं। दलित की परिभाषा में आनेवाले ही सम्माननीय होगये हैं। ब्राह्मण अपना स्वाभिमान छोड़कर क्षुद्र स्वार्थ में लिप्त या निराश और उदासीन हो रहा है। अतः वह सबसे अधिक उपेक्षणीय, त्याज्य, शंकास्पद और हीन हो चला है। इस तरह पूरा भारतीय समाज, अपनी

संस्कृति के आलोक में, शीर्षासन पर योगसिद्ध कर रहा है। सभी जगह अविश्वास और अशांति व्याप्त है।

इस स्थिति से समाज को उबारनेकी प्रसुप्त क्षमता ब्राह्मण में ही है।अपनी योज्ञता और अन्तर्निहित ब्राह्मणत्व को जाग्रत करके और क्षत्रित्व के सहयोग से समर्थ होकर ब्राह्मण ही समाज को अपने पैरों पर खड़ा कर सकता है।दोनों का योग देशहित में होगा। अग्नि और वायु के संयोग से ऊत्पन्न शक्ति अपरिमेय होती है। ब्राह्मणत्व और क्षत्रित्व को जानने और आदर देने वाला प्रत्येक व्यक्ति इस कार्य मे सहायक हो सकता है।

(139)
धर्म की रक्षा

सनातन हिन्दू धर्म वेद पर आधारित है। वेद मे उत्पत्ति, पालनपोषण तथा मृत्यु होने पर सद्गति तीनों के लिए ऋषि, देवता और पितर की उपासना व यज्ञ का विधान किया गया है। इस समय ऋषि और पितर कोई मानता ही नहीं। देवता के नाम पर प्रेत और मजार की पूजा भी होने लगी है। आकाश मे स्थित, इस शरीर से न पहुंचने योग्य स्वर्ग लोक में रहने वाले देवताओं को, पौराणिक युग में, त्रिविष्टप (तिब्बत) तक उतार कर, उनके यहां रथ से पहुंचने की कल्पना कर ली गई, और अब उन्हें मन्दिरों में बैठा कर, उनके रिश्तेदार बनाने, शादी-विवाह करने आदि की कल्पना प्रचलित है। धर्म मंदिर, यात्रा, मेला आदि तक सीमित होगया है। यह धर्म का अधोपतन है। हम अपने धर्म को निन्दनीय बना देंगे तो बाहरी आदमी इसका उपहास करेगा ही। तब रामायण और महाभारत के आदर्श पात्र भो निन्दनीय हो जायेंगे। साम्प्रदायिक विवाद से धर्म की रक्षा नहीं होगी।

धर्म की रक्षा के लिए हमें मौलिक धर्मशास्त्रों, आचार-व्यवहार, संस्कृति और जीवन के मूल्यों को सुरक्षित करना पड़ेगा। सत्य के आधार पर संगठित, समाज और शासन धर्म के विरोधी समस्त दुष्टों को समाप्त कर सकता है। अब भी सत्य है – 'धर्मो रक्षति रक्षितः।'

(140)
विकल्प का अभाव

दिलीप के बाद रघु राजा बने तो बिना विकल्प खोजे ही जनता को प्रसन्नता हुई। विकल्प की खोज में चिंता होने लगे तो समझ लेना चाहिए कि वर्तमान

कल्प लोगों की दृष्टि में हानिकारक हो गया है तथा विकल्प नहीं दिखाई पड़ रहा है। विकल्प के अभाव में व्यवसाय में एकाधिकार तथा शासन में व्यक्तिवाद और तानाशाही होती है। तब महंगाई बढ़ती है तथा रुग्ण सरकार जनता का खून चूसने लगती है। अति होने पर नागनाथ की जगह कोई सांपनाथ ले लेते हैं। ईश्वर की कृपा हो जाय तो नेपोलियन की तरह कोई चमत्कारी पुरुष भी विकल्प के रूप में आसकता है। संसार में यही सामान्य नियम देखा गया है।

अपने देश के में उपर्युक्त बातें किस स्तर पर हैं, यह देश के हितैषियों के चिंतन का विषय है। महापुरुष के प्रगट होने की प्रतीक्षा तो आलसी लोगों का कार्य है। बुराई के विरुद्ध संघर्ष करने मे अक्षम किन्तु प्रबुद्ध लोग बहुत बड़ा योगदान देश के लिए कर सकते हैं। लोगों में नैतिकता और अनैतिकता, धर्म और अधर्म, सत्य और असत्य, सदाचार और दुराचार न्याय और अन्याय, संस्कृति और विकृति, स्वभिमान और गुलामी, स्वतंत्रता और परतंत्रता, अपना और पराया आदि बातों का विपरीत ज्ञान प्रचारित है। इनके विषय में जनता को सही ज्ञान कराना, भ्रमनिवारण करना आज के लिये सबसे उपयोगी शिक्षा है। मौन बैठे रहना पढ़े लिखे लोगों का अपराध है। इस कार्य के लिए उत्साह के साथ थोड़ा बहुत बाहर निकलने का स्वभाव बनाना आवश्यक होगा।

(141)

जन्मसिद्ध अधिकार

अन्याय का विरोध करना सबका जन्मसिद्ध अधिकार और स्वाभिमानी व्यक्ति का स्वाभाविक कर्तव्य है। विरोध उस हद तक करना चाहिए जितने में उसका प्रभाव पड़ सके। हद के निर्धारण में विवेक की आवश्यकता पड़ती है। बदले की भावना नहीं उत्पन्न होनी चाहिए। अन्याय को सहन करने के कारण नहीं बल्कि अन्याय न होने के कारण इस अधिकार का प्रयोग जहाँ जितना ही कम करना पड़ता है,वहाँ समाज, मुखिया या शासन उतने ही अच्छे कहे जाते हैं।

'अन्याय सहकर बैठ रहना भी महा दुष्कर्म है'। दुष्कर्म से बचें। अन्याय का विरोध करने के लिए सदैव उद्यत समाज में संजीवनी शक्ति बनी रहती है। वहां शासन पर भी अंकुश रहता है।

(142)

गुरुः शंकररुपिणः

आज दक्षिणामूर्ति स्वरूप, परम गुरु भगवान विश्वनाथ का दर्शन, पूजन हुआ। दर्शन देना ही उनकी कृपा का द्योतक समझता हूं। पुनः, तस्मै श्री गुरवे नमः।।

(143)

अनुभव

बाल्यावस्था में जो परिस्थितियां और अनुभव सहज रूप से प्राप्त हो जाते हैं, वे चाहने पर भी पुनः नहीं मिलते हैं। इसके ठीक विपरीत, वृद्धावस्था में जो परिस्थिति और मनःस्थिति बनती हैं, वह चाहने पर भी नहीं जाती हैं। अतः वृद्धावस्था में संकट से बचने के लिए, जीवन के उत्तरार्द्ध से ही, सद्विचारों के आने का मार्ग प्रशस्त करते हुये, अनासक्त और अकाम रहने का अभ्यास करना श्रेयस्कर है।

(144)

धर्म के तीन स्वरूप

1- व्यक्ति और समाज को धारण करने का विज्ञान धर्म है।आचार व्यवहार द्वारा अभ्युदय और सात्विक उपासना द्वारा निःश्रेस् का मार्ग प्रशस्त करना ही धारण करना है। इसी की शिक्षा देना और इस पर आरूढ़ होना धर्म का आदर्श स्वरूप है।

2- चमत्कार दिखाकर सम्मोहित करने वाले आचारहीन लोग, तामसी उपासना द्वारा शीघ्र ही सिद्धियां पा जाते हैं। चित्तनदी में पाप और पुण्य दोनों प्रवाहित होते हैं – 'उभयतो वाहिनी चित्त नदी वहति पापाय वहति पुण्याय।' पतन की ओर वेग से जाना होता है। इस तरह के धर्म के उपासक और प्रचारक तेजी से बढते हैं। यह धर्म का मिथ्याचारी स्वरूप है।

3- धार्मिक मान्यता, ग्रंथ ,तीर्थ, देवता, मंदिर, मेला, यात्रा, विविध कर्मकांड आदि के उपयोग के द्वारा जनता को सम्मोहित और पथभ्रष्ट करके राजनैतिक संगठन बनाने, इनके द्वारा पर्यटन, आकर्षण, अर्थार्जन आदि की व्यवस्था करने और शक्ति का केन्द्र बनने की व्यवस्था करना भी धर्म का एक

स्वरुप है। मार्क्स ने इसी धर्म के लिए जनता की अफीम (opiate of masses) कहा था। यह अफीम से भी अधिक घातक है क्योंकि इससे अफीम के सेवन में सोने के बजाय अनिष्टकारी कर्मों में तत्परता बढ़ती है। इससे मूल धर्म और संस्कृति विलुप्त हो जाती है। यह धर्म का राजनैतिक स्वरूप है।

धर्म, समाज, संस्कृति, अपनी मौलिक पहचान और राष्ट्र की सुरक्षा केलिए अपने वास्तविक धर्म की ज्योति प्रदीप्त करनी होगी। इससे ही सनातन धर्म सशक्त होगा और उस पर हो रहे आक्षेपों का निराकरण हो जायेगा। तब धार्मिक आधार पर लोकनीति की प्रतिष्ठा होगी।

(145)
सिनेजगत पर नियंत्रण

किसी समय सिनेमा भी सामाजिक विकास के लिए विविध संदेश देने के साथ मनोरंजन का साधन था। आज, इससे सामाजिक, आपराधिक, सांस्कृतिक, धार्मिक तथा व्यावहारिक मर्यादा संबंधी समस्याएं भी पैदा हो रही हैं जो चिंताजनक हो चुकी हैं। इस व्यवसाय पर नियंत्रण - समाज, शासन या स्वयं सिनेजगत के प्रबुद्ध लोगों द्वारा संभव है। इनमें से मात्र समाज और शासन द्वारा नियंत्रण की आशा बहुत कम है क्योंकि समाज में बहुसंख्यक मनचले लोगों की रुचि सस्ते मनोरंजन में बढ़ गई है तथा सत्तारूढ़ दल इस संस्था में हस्तक्षेप करके सिने-कलाकार तथा जनता को असंतुष्ट नहीं कर सकता है। ऐसी हालत में सिनेजगत में सद्बुद्धि पैदा करने का प्रयास सार्थक हो सकता है।

स्त्री पात्रों का नग्न और अर्द्धनग्न होकर प्रदर्शन एक तरह का देह-व्यापार ही है। इसका विरोध होना चाहिए। व्यक्तिगत जीवन में जो भी हो, प्रदर्शन और वाणी से स्वयं बुरी बात को प्रचारित करना बेहयाई है। उन्हें भी भारतीय नारी की मर्यादा के अनुसार रहना अपेक्षित है। भारतीय नारी को मनोरंजन का पात्र बनाकर उनके अशक्तीकरण के स्थान पर उनके सशक्तीकरण में सिनेजगत का सहयोग होना चाहिए। इसी तरह, कथानक के चयन में, ऐतिहासिक पात्रों, धार्मिक मान्यताओं, समाज और संस्कृति के स्वरूप आदि को विकृत करने से बचने में पूर्ण सावधानी चाहिए। विवाद उत्पन्न करने से सामाजिक और प्रशासनिक समस्या होती है।

सिनेजगत को स्वस्थ मनोरंजन और अच्छे सन्देश देने का माध्यम बनाने में समाज, संस्कृति और देश का हित है। इसके लिए सामाजिक संस्थाओं तथा शासन के साथ ही समझदार तथा प्रभावशाली सिनेजगत के व्यक्तियों को मिलकर प्रयास करना पड़ेगा।

(146)
पुनि पछितैहों अवसर बीते

राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री के रूप में, राष्ट्राध्यक्ष ही देश की संक्षिप्त पहचान है। कुर्सी नहीं व्यक्ति का महत्व स्थायी होता है। पदस्थ के व्यक्तित्व तथा कार्य के आधार पर ही अन्तर्राष्ट्रीय और आन्तरिक, दोनों स्तरों पर, समझदार लोग देश की दशा और गतिविधि का आकलन करते हैं। अन्तिम परिणाम के अनुसार इतिहास मे स्थान निर्धारित होता है। अतः, सत्तासीन को वर्तमान के साथ भविष्य की भी परवाह करना आवश्यक है। इसके लिए सत्य और न्याय का आश्रय लेना अनिवार्य है।

(147)
ब्राह्मणवाद

सम्पूर्ण भारतीय समाज परस्पर विरोधी, जातिगत संगठनों में विभक्त हो चला है। उन संगठनों में बड़े से बड़ा चिंतक भी सम्पूर्ण समाज का हितैषी नहीं है। सभी जातियों के संगठनों मे एक ही समानता है कि वे ब्राह्मण के विरोधी हैं यद्यपि सभी ब्राह्मण की प्रतिष्ठा के इच्छुक हैं। ब्राह्मण ही ऐसी जाति है जो जातिवाद के संकीर्ण चिंतन से ऊपर रहता है। उसका संगठन जाति नहीं, योग्यता के आधार पर समाज का वास्तविक हित चाहता है। ईर्ष्यालु लोग, योग्यता को वरीयता देना ही ब्राह्मणवाद के नाम से प्रचारित करके निन्दा करते हैं।

जाति को आधार न बनाकर, योग्यता को बढ़ावा देना, उसका संरक्षण करना, सत्य का आश्रय लेकर स्वयं अपनी योग्यता को बढ़ाना सही ब्राह्मणवाद है। जो भी ऐसा कर सके वह ब्राह्मणत्व का उपासक और ब्राह्मणवादी है। वह किसी का विरोधी नहीं होता है। वही समाज और देश का सही सेवक और मार्गदर्शक हो सकता है।

(148)
पुनर्जन्म में विश्वास

सनातन धर्म में संचित, प्रारब्ध और क्रियमाण के रूप में तीन प्रकार के कर्मफल का निरूपण है। यह सिद्धांत शास्त्र, प्रयोग और तर्क तीनों की कसौटी पर वैज्ञानिक है। पुनर्जन्म में विश्वास और परलोक में दण्ड का भय होने पर ही इसमें श्रद्धा होती है। श्रद्धासम्पन्न व्यक्ति के लिए कर्ममार्ग और ज्ञानमार्ग का ज्ञान शास्त्रों में मिलता है। इन मार्गों से सम्बंधित दो मंत्र नीचे हैं-

'विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव यदःभद्रं तन्न आसुव।' (यजुर्वेद)। इसमें संचित पापों से मुक्ति की नहीं, (क्योंकि मुक्ति संभव नहीं है) उन्हें पीछे करके कल्याणकारी पुण्यों को उपस्थित करने की प्रार्थना है। यहां कर्ममार्ग के द्वारा सदैव सात्विक, पुनीत रहने पर, ज्ञानमार्ग में प्रवेश तथा उद्धार की कामना है।

'तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात।' (गायत्री मंत्र)। इसमें कर्मफल नहीं, बुद्धि की कामना है। बुद्धि ही उच्चतम स्तर पर पहुंचकर विवेकख्याति और परवैराग्य होने पर आत्मज्ञान का साधन है। यह सीधा ज्ञानमार्ग है जिससे सभी कर्मफल समाप्त हो जाते हैं। 'ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात् कुरुते तथा।' -गीता। इन दोनों मार्गों से चलकर आत्म-कल्याण संभव है।

इस समय सनातन धर्म के नाम पर, सात्विक के स्थान पर, राजस और तामस तथा राक्षसी, आसुरी व पैशाचिक साधनाओं द्वारा शीघ्र सिद्ध होने की परंपरा चल पड़ी है। बड़े-बड़े लोग इसी में फंसे हैं और अधोपतित हो रहे हैं। इसको समाप्त करके सात्विक साधना करने पर ही सनातन धर्म का प्रकाश विश्व में व्याप्त होगा। तात्कालिक लाभ का मोह छोड़कर, पुनर्जन्म और परलोक तक में में सुखी रहने की व्यवस्था में श्रद्धा आवश्यक है।

गीता में आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी और ज्ञानी चार प्रकार के ईश्वर के उपासक बताये गये हैं। 'उदारा सर्व एवैते ज्ञानी त्वात्मैव मेमतम्' -गीता। ज्ञानी ईश्वर को प्रिय होता है किन्तु इन चारों को उदार कहा गया है। उदार इसलिये कहा कि यह भी वैदिक देवता यानी ईश्वर के ही उपासक हैं। भूत, प्रेत, यक्ष, राक्षस आदि अवैदिक देवताओं की पूजा न करना भी सनातनी होने का लक्षण है। स्वधर्म का

पालन गीता की प्रमुख शिक्षा है। पुनर्जन्म मे विश्वास और धैर्यपूर्वक स्वधर्म के पालन से लोक-परलोक दोनों सिद्ध होंगे।

'अनेक जन्मसंसिद्धिस्ततो याति परां गतिम्।।'

(149)

शोषणमुक्त समाज

बलवान के द्वारा दुर्बल का शोषण प्राकृतिक नियम है। प्रकृति के पांच तत्वों मे भी ऐसा देखा जाता है। किन्तु वे तत्व परस्पर आदान-प्रदान के द्वारा संतुलन बनाए रहते हैं। वायु जल का शोषण करता है तो बादल के रूप में, जल का शोधन करके, उसे लौटा देता है। यह प्रकृति का यज्ञ विधान है। मनुष्य इस विधान का पूर्ण पालन नहीं करता है, अतः शोषण करके, अन्यायी, भोगी और रोगी बनजाता है। तभी समाज में शोषक और शोषित बनते हैं। इसे रोकने के लिए मनुष्य ने कुछ नियम और संयम की संस्कृति विकसित किया है।

वैदिक संस्कृति में यज्ञ के द्वारा सम्पूर्ण चराचर सृष्टि को तृप्त किया जाता था। राजा भी इस व्यवस्था को बनाए रखने के लिए प्रयत्नशील रहता था। तब शोषण से मुक्त समाज था। रामायण काल से लेकर आगे, जब तक वैदिक संस्कृति मे संजीवनी शक्ति थी, लोकनीति प्रबल रहती थी तथा राजधर्म में उसकी सुरक्षा ही प्रधान कार्य था। तब तक गरीब-अमीर, स्त्री-पुरुष, अपना-पराया आदि के भेद से परस्पर शोषण नहीं संभव था। स्वधर्म के पालन से सभी सुखी रहते थे। रामराज्य इस व्यवस्था के आदर्श के रूप में जाना जाता है।

भारत मे बाहरी शासकों और संस्कृतियों का प्रभाव बढ़ने, सामंतशाही व्यवस्था के आने और अपनी संस्कृति के दुर्बल होने पर, शोषण की प्रवृत्ति बढ़ी। मूर्ख और नासमझ लोग शोषण का कारण मनुवादी या ब्राह्मणवादी संस्कृति को मान बैठे हैं। उनके लिए ओषधि ही विषतुल्य दिखाई पड़ रही है।

वर्तमान समय में कहीं साम्यवाद के द्वारा व्यक्ति की गरिमा तथा उसकी स्वतंत्रता का शोषण, कहीं जाति और संप्रदाय के कारण योग्यता का शोषण, कहीं राज्य द्वारा अत्यधिक कराधान और मंहगाई से शोषण, कहीं भय और लोभ उत्पन्न करके दिग्भ्रमित जनता का शोषण आदि तो हो ही रहा है, सर्वत्र सशक्त देशों द्वारा दुर्बल देशों का शोषण भी चल रहा है। राष्ट्रीय और वैश्विक दोनों स्तरों पर शोषण की आंधी चल रही है।

शोषण की इस महामारी से बचने के लिए हमें अपनी संस्कृति और स्मृतियों की शरण लेनी पड़ेगी। परस्पर सहयोग और भाईचारा की भावना पैदा करने के लिये आदान-प्रदान वाली सामूहिक व्यवस्था करनी पड़ेगी। वर्तमान व्यवस्था को उलटकर लोकनीति को प्रबल और राजनीति को उसका सहायक बनाना आवश्यक है। हम अपने देश में शोषण मुक्त समाज बनाकर, विश्व को भी संदेश दे सकते हैं।

(150)
जीवनयात्रा का राजमार्ग

लोकेऽस्मिन्द्विधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयानघ।
ज्ञानयोगेन सांख्यानां कर्मयोगेन योगिनाम्।।3/3 गीता।

साधना की पराकाष्ठा (चरमोत्कर्ष) को निष्ठा कहा जाता है। मनुष्य उत्कृष्ट प्राणी है, अतः उसे निष्ठावान होना चाहिए। ऐसे मनुष्य को, जीवन की सार्थकता के लिए, गीता में उपर्युक्त दो ही मार्ग बताये गये हैं। इन दो मार्गों के विषय में पूर्ण जानकारी भी वहीं दी गई है। प्रथम- कर्ममार्ग को सर्वजन सुलभ बताया है तथा द्वितीय - ज्ञानमार्ग को, दुस्साध्य होने के कारण, विशेष अधिकारी के लिए बताया है। कर्ममार्ग से चल कर भी साधना की निष्ठा प्राप्त होती है। अतः इसे ही जीवन-यात्रा का राजमार्ग कहा जा सकता है।

आजकल अनेक प्रकार के पाखंडी गुरु पैदा हो गये हैं और अपनी रुचि के अनुसार अनेक मार्गों का उपदेश दे रहे हैं। कोई संभोग से समाधि, कोई विहंगम योग से सद्यः सिद्धि, कोई अंधभक्ति से सुखसाधन आदि सहस्त्रों तरह के चमत्कार से लोगों को सम्मोहित कर रहा है। कामधेनु का त्याग करके, छेड़ी की सेवा करना सिखाया जा रहा है। इन गंदे मार्गों का त्याग करके हमे अपने शास्त्रीय राजमार्ग पर आरूढ़ रहना श्रेयस्कर है।

कर्मयोग के राजमार्ग का आरंभ स्वधर्म के पालन से होता है। स्वधर्म का निर्धारण कुलपरंपरा और विशेष प्रतिभा के आधार पर होता है। अकाम होने का उपदेश गीता में नहीं है क्योंकि उस समय कोई क्रिया संभव नहीं है। 'अकामस्य क्रिया काचित् दृश्यते न हि कर्हिचित्' (मनुस्मृति)। स्वकर्म को अनासक्त, रागद्वेष से रहित, होकर करना निष्कामता कही गई है। गीता में यही उपदिष्ट है।

निष्कामता की साधना मे अहंकार बाधक होता है। इस बाधा से बचने के लिए ईश्वरार्पण करना ही उपाय बताया गया है। ऐसा करने पर शुभ या अशुभ दोनों तरह के कर्मफल से मुक्ति मिल जाती है। यहां भक्तियोग नामक किसी तीसरे मार्ग की कल्पना करना अशास्त्रीय है। ईश्वरार्पण नामक भक्ति कर्मयोग मे सहायक, एक कर्म ही है। कर्म और ज्ञान की सिद्धि होने पर अकामता स्वतः आती है। यह साधन नहीं चरम सिद्धि है।

सनातन धर्म के समस्त अंग - यज्ञ, दान, क्रियायोग, वर्णव्यवस्था, आश्रम-व्यवस्था आदि का संक्षिप्त उल्लेख गीता में मिलता है। इनका विस्तार संबंधित आकर ग्रन्थों में देखने के लिये प्रेरणा मिलती है। इस तरह गीता में उपदिष्ट कर्मयोग हमारी जीवन-यात्रा के लिए राजमार्ग है। इस मार्ग से चलकर ज्ञान की पराकाष्ठा और जीवन की सार्थकता सुलभ है।

(151)

रामराज्य

बरनाश्रम निजनिज धरम निरत वेदपथ लोग।
चलहिं सदा पावहिं सुखहिं नहिं भय सोक न रोग।।

(152)

गुलामी की मानसिकता

मन के हारे हार है मन के जीते जीत-यह एक प्रचलित मान्यता है। मानसिक रूप से आक्रांत होने पर गुलामी के समस्त कुलक्षण प्रगट होते हैं। इसका प्रभाव धार्मिक, सामाजिक तथा राजनैतिक, सभी क्षेत्रों में निम्नलिखित क्रम से प्रत्यक्ष होने लगता है।

सर्वप्रथम अंधभक्ति का प्रकोप होता है। धर्म में 'भक्तिर्ज्ञानाय कल्पते' की जगह अंधभक्ति का प्रादुर्भाव होता है। करिश्मा देखकर अंधभक्त होने वाले लोग पाखंडियों को भी ईश्वरीय अवतार मान लेते हैं। तब धर्म विकृत हो जाता है। इसी तरह सामाजिक और राजनैतिक व्यवस्था में भी अंधभक्ति व्याप्त हो जाती है।

द्वितीय चरण में व्यक्तिवाद, परिवारवाद, जातिवाद आदि अनेक संकीर्ण मानसिकता के वादों का उदय होता है।

तृतीय चरण में पक्षपात, योग्यता का तिरस्कार, अयोग्य की पूजा आदि स्वार्थपूर्ण क्रियाकलापों का आचरण होने लगता है।

चतुर्थ चरण में असत्य, अन्याय, भ्रष्टाचार, आतंकवाद, अशान्ति, गरीबी, असुरक्षा आदि से धर्म, समाज, संस्कृति, एवं राज्य सभी अव्यवस्थित और अधोपतित होते चले जाते हैं।

इस तरह, कार्यकारण भाव से, गुलामी की मानसिकता और अंधभक्ति ही, समस्त समस्याओं के लिए मूलभूत सिद्ध होते हैं। इसका निराकरण मूलोच्छेद से ही संभव है। धर्म को अंधभक्ति से हटाकर सनातन-शास्त्रसम्मत बनाना, मृतप्राय समाज को अपनी अस्मिता तथा शास्त्रों की सुशिक्षा द्वारा संजीवनी शक्ति देना, राजनीति पर, सत्य और न्याय के द्वारा, समाज का अंकुश प्रभावी करना पड़ेगा। भारत में सहस्त्राधिक वर्षों से उत्पन्न और राज्याश्रय में विकसित गुलामी की मानसिकता और अंधभक्ति के समाप्त होने पर ही हम वास्तविक रूप में स्वतंत्र होंगे।

(153)
लक्ष्यनिर्धारण

आज के आज अखबार में विवेकानंद के नाम से एक सुभाषित है –'लक्ष्य सही होना चाहिए, क्योंकि काम तो दीमक भी दिन-रात करता है परन्तु वह निर्माण नहीं, विनाश करता है'। यह संदेश आज के समय के लिए बहुत उपयोगी है। दिन-रात काम करना भी घातक हो सकता है। लक्ष्य देशहित और उपाय नीतिसम्मत रखने के लिए विवेकानंद की शिक्षा इस समय सर्वथा आदरणीय है।

(154)
मित्रता - दो प्रकार

1-व्यक्तिगत मित्र-

जे न मित्र दुख होहिं दुखारी।
तिन्हहिं विलोकत पातक भारी।।

लेतदेत मन शंक न करई।
बल अनुमानि सदा हित करई।।

2-विश्वामित्र-

कीरति भनिति भूति भलि सोई।
सुरसरि सम सबकर हित होई।।
बैरिहुं राम बड़ाई करहीं।
बोलनि मिलनिचलहिं अनुसरहीं।।

इन चौपाइयों का अर्थ व्यवहार के आधार पर ज्ञातव्य है। 1- व्यक्तिगत मित्रता के आरंभ में इस जन्म या पूर्वजन्म का स्वार्थ कारण होता है। ईमानदार व्यक्ति उसका निर्वाह स्वार्थसिद्धि के बाद भी करता है। 2-प्राणिमात्र से मित्रता अकारण, सहज रूप से निर्मल स्वभाव के आधार पर होती है। यह दुर्लभ स्वभाव है। साधु और असाधु दोनों का मित्र होना कठिन है। किन्तु सत्य और न्याय के आधार पर निर्णय लेने वाला व्यक्ति, दण्ड देकर भी, सब का निर्विवाद मित्र बना रहता है। वह विश्वामित्र कहा जाता है।

(155)

तिरंगा - राष्ट्रीय ध्वज

'प्रादुर्भूतोऽस्मि राष्टेऽस्मिन् कीर्तिमृद्धिं ददातु मे।' श्री सूक्त-ऋग्वेद। इस मंत्र में राष्ट्र में पैदा होने मात्र के प्रभाव से यश और सम्पन्नता की आशा की गई है। राष्ट्र के गौरव, उसकी सम्पन्नता और उसके स्वाभिमान से सभी नागरिक स्वाभिमानी और गौरवान्वित रहते हैं। राष्ट्रध्वज स्वाभिमान और गौरव का प्रतीक होता है। तिरंगा भारत का राष्ट्रध्वज है। इसी की शान के लिए सैकड़ों देशभक्तों ने आत्माहुति दिया है। सन् 1947 के पहले जिस स्वाभिमान के लिए तिरंगा था उसीलिए अब भी है। इसके नीचे, अक्षुण्ण स्वाभिमान के रहते, हम सदैव स्वतंत्र थे। आज भी राष्ट्रीय ध्वज को ऊंचा रखने वाले बलिदानियों तथा अपने स्वाभिमान पूर्ण सांस्कृतिक गौरव का स्मरण दिलाने के लिए यही सचेतक है, और भविष्य में भी रहेगा। राष्ट्र और प्रत्येक नागरिक के स्वाभिमान तथा गौरव स्वरूप तिरंगे का अभिवादन है।

(156)
सत्यमेव जयते

'सत्यमेव जयते नाऽनृतम्' - यह आर्षवाक्य है, जो हमें सर्वथा मान्य है। किन्तु इतिहास और व्यवहार में इसके विपरीत अनेक उदाहरण गिनाये जाते हैं। इससे उत्पन्न होने वाले भ्रम का निवारण शास्त्र से ही संभव है।

गीता में किसी कार्य की सिद्धि के लिए सांख्यशास्त्र में निर्धारित पांच कारणों को बताया गया है - अधिष्ठानं तथा कर्ता करणं च पृथग्विधम्। विविधाश्च पृथक्चेष्टा दैवं चैवात्र पञ्चमम्।। यहां कार्य की सिद्धि के लिए क्षेत्र, कर्ता, सहायक तत्व, अनेक प्रकार के उपक्रम तथा भाग्य (पूर्वजन्मों के कर्मों का फल) इन पांच कारणों को गिनाया गया है। धर्माधर्म, सत्यासत्य, नीति-अनीति जैसे तत्वों की कार्यसिद्धि में कोई भूमिका नहीं होती है। इनकी भूमिका कार्य के फल देने में होती है। कार्यसिद्धि और उसका फल दोनों अलग-अलग हैं। एक कर्ता तथा अन्य चार सहायक कारणों के अधीन है तो दूसरा ईश्वराधीन है। फल तत्काल नहीं, यथा समय मिलता है, अतः ईश्वराधीन कहा गया है। ऐसी स्थिति में कार्य सिद्धि मात्र से जय-पराजय का निर्णय मानने से ही भ्रांन्ति उत्पन्न होती है। किसी कार्य का फल, परिणाम, प्रभाव आदि देखने पर जय पराजय का सही ज्ञान होता है और सत्यमेव जयते प्रतिष्ठित रहता है।

गीता में किसी कर्म के अच्छे बुरे का आकलन करने के लिए उससे उत्पन्न फलों को बताया गया है – 'कर्मणःसुकृतस्याहुः सात्विकं निर्मलं फलम्। रजसस्य फलं दुखं अज्ञानं तमसः फलम्।।' इस परीक्षण के द्वारा जयपराजय का भी आकलन हो जाता है। जिसकी करनी से धर्म, सत्य, नीति आदि की प्रतिष्ठा होती है उसकी विजय और जिसकी करनी से अधर्म आदि व्याप्त होता है उसकी पराजय मानी जा सकती है। इस तरह आर्षवाक्य प्रमाणित है।

इतिहास में देखें - रामायण में राम की विजय एक कर्म की सिद्धि है तो रामराज्य उसका फल है। अतः राम की विजय मान्य है। महाभारत में पाण्डवों की विजय और उनके छत्तीस वर्ष के राज्य का प्रभाव धर्म की प्रतिष्ठा का हेतु नहीं बन सका। उनके उत्तराधिकारी परीक्षित हुये जो स्वयं अधर्म के मार्ग पर चल पड़े और तपस्वी के गले में सांप डाल दिया। इस तरह महाभारत के युद्ध में कौरव

और पांडव दोनों की पराजय हुई। धर्म और सत्य के मार्ग पर कोई दृढ़ नहीं रहा। अतः वह धर्मयुद्ध नहीं रह गया। उसके बाद यह देश सब प्रकार से पतनोन्मुख हो गया।

हमारी स्वतंत्रता की लड़ाई भी धर्माधर्म से मिश्रित रही। राज्य मांगने और समझौता करने से नहीं मिलता है। उसे पराक्रम द्वारा छीनना पड़ता है। वीरभोग्या वसुंधरा। देश के विभाजन और वर्तमान समस्याओं को देखते हुये यह निष्कर्ष निकलता है कि इस युद्ध में हम वास्तविक विजय नहीं पाये हैं।

वर्तमान समय में इस संदेश की उपयोगिता हो सकती है। तात्कालिक विजय, बाद में पराजय का रूप ले सकती है। अतः परिणाम का आकलन करके, सत्य और न्याय के आधार पर ही, कार्यसिद्धि का प्रयास उचित है। विश्वास रहे-सत्यमेव जयते।।

(157)
सांस्कृतिक साम्राज्य

आजकल उठ रही हिन्दू राष्ट्र की मांग में राजनैतिक हित की गंध होने के कारण, यह विषय विवादास्पद बन रहा है। इसके आलावा इसमें संकीर्णता भी लक्षित होती है । इससे देश के प्रति आत्मीयता रखने वाले पारसी, ईसाई और मुसलमान अपने को उपेक्षित समझेंगे क्योंकि राजकीय कार्यों के लिए ईसाई, मुसलमान तथा पारसी को छोड़कर, जो देश में रहते हैं, सभी हिन्दू माने जाते हैं। किन्तु हिन्दुओं में, आंतरिक विविधता और कटुता भी समस्या है। इतिहास में, यहां हिन्दू राष्ट्र नहीं बल्कि विशाल सांस्कृतिक साम्राज्य ही मिलता है। अनेक सम्प्रदायों के होने पर भी भारतीय संस्कृति सब में अनुस्यूत रही है। अतः भारत ही नहीं, विश्व भर के अनेक देशों में यह साम्राज्य व्याप्त था और यह देश जगद्गुरु कहा जाता था।

अपने देश में लोकनीति की प्रतिष्ठा तथा सांस्कृतिक मूल्यों की रक्षा के लिए शासन द्वारा विभिन्न स्तरों में अनेक संशोधन करना अपेक्षित है। तब, हिन्दू राष्ट्र नहीं, भारतीय सांस्कृतिक राष्ट्र और तदुपरांत सांस्कृतिक साम्राज्य की कल्पना करना उचित है।

(158)

आत्म प्रशंसा

महाभारत के युद्ध में सेनापति कर्ण का घोर पराक्रम प्रकट था। उसके सामने कोई टिक नहीं पा रहा था। थोड़े ही समय में युधिष्ठिर बुरी तरह घायल होने पर युद्धक्षेत्र से बाहर आ गये। उपचार हो रहा था। समाचार पाकर अर्जुन भी कुशल जानने के लिए वहां चले गये। युधिष्ठिर असहज मनोदशा में थे। उन्होंने अर्जुन से कहा कि हमें देखने की आवश्यकता नहीं है। कर्ण से लड़ने में तुम भी भाग रहे हो। गांडीव को धिक्कार है। यह आक्षेप और गांडीव की निन्दा सुनकर अर्जुन क्रुद्ध हो गये। उन्होंने पहले से प्रतिज्ञा कर रक्खी थी कि जो गांडीव की निन्दा करेगा उसे जीवित नहीं छोडूंगा। अतः अर्जुन युधिष्ठिर को मारने के लिए उद्यत हो गये।

विषम परिस्थिति देख कृष्ण सामने आ गये। वे जानते थे कि अर्जुन को प्रतिज्ञा से विमुख करना असंभव है। अतः परिस्थिति के अनुसार, हत्या के विकल्प से प्रतिज्ञा पूर्ण करने का उपाय कृष्ण ने बताया। उन्होंने कहा कि अपने सम्माननीय श्रेष्ठ जन को 'तुम' कहकर अपमानित करना भी उसकी हत्या है। अर्जुन ने इस सुझाव को मानकर, युधिष्ठिर को अपमानित करके अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण किया।

ऐसा करने के तत्काल बाद अर्जुन को, बड़े भाई का अपमान करने का क्षोभ होने लगा। इस पीड़ा से विचलित होकर उन्होंने आत्महत्या करने का संकल्प किया। पुनः परिस्थिति विकट हो गई। कृष्ण ने आत्महत्या का भी विकल्प बताकर, अर्जुन को वैसा ही करने को राजी किया। उन्होंने बताया कि आत्मप्रशंसा भी आत्महत्या के बराबर है। अर्जुन ने अपने गुणों और पराक्रम संबंधी आत्मप्रशंसा करके दूसरी प्रतिज्ञा भी पूरी किया।

महाभारत में उपलब्ध यह कथानक प्रक्षिप्त भी हो सकता है किन्तु युगदृष्टा कवि ने, इसमें दो मान्य शिक्षायें दिया है। वे हैं - बड़ों का अपमान और आत्मप्रशंसा न करना। ये दोनों हत्या के बराबर हैं। अन्यत्र भी यह बातें लिखी हैं। तुलसीदास – 'निज मुख कहि जिमि सुकृत सिराहीं।'

आज के समय में, बड़े-बड़े लोग, यह दोनों हत्यायें नित्य कर रहे हैं। अपनी विरासत को सुरक्षित रखने के लिए हमें इन प्रत्यक्ष पापों से विरत रहने का संकल्प लेना पड़ेगा।

(159)
कुल एवं वृत्ति-वर्णसंकरता

गीता के प्रथम अध्याय तथा द्वितीय अध्याय के 9वें श्लोक तक में अर्जुन ने अपने ही कुल का क्षय करने वाले युद्ध को न करने के पक्ष में कई तथ्यों को उपस्थित किया है। उन्होंने अपने ही बन्धु-बान्धवों तथा पूज्य गुरुजनों से लड़ना तथा उन्हें मारना, राज्य के लोभ में मर्यादा भंग करना, विशेष रूप से जब विजय पाना भी संदिग्ध है तथा विजयी होने पर भी, सबके मर जाने पर, राजसुख की प्राप्ति असंभव है, के कारण युद्ध को उचित नहीं माना। इनके अलावा कुलक्षय होने से वर्णसंकरता और उससे कुलधर्म का नाश व पितरों का भी पतन जैसे अधोपतन की अवश्यंभाविता को देखते हुए युद्ध से विमुख होने का ही अर्जुन ने निश्चय किया।

गीता में अर्जुन की सारी शंकाओं का समाधान किया गया है किन्तु वर्णसंकरता की महत्वपूर्ण समस्या का निराकरण नहीं हुआ। इस शंका को असंगत भी नहीं कहा गया। अंत में युद्ध का परिणाम वैसा ही हुआ जैसा अर्जुन ने कहा था। यह युद्ध के उपरांत के महाभारत में स्पष्ट है। इसके बाद यह देश तथा इसकी संस्कृति दोनों संकटग्रस्त हो गये।

इससे शिक्षा मिलती है कि वर्णसंकरता को रोकना भारत देश के लिए संजीवनी शक्ति है। इस देश का डीएनडीए ऐसा ही है। यहां वर्णसंकरता ही विकास और सुरक्षा (योगक्षेम) दोनों में बाधक है। कुल एवं वृत्ति दोनों में विचलन से वर्णसंकरता होती है। विदेशी संस्कृति का अनुकरण करने पर हम कहीं के नहीं रह जाते हैं। जाति नहीं केवल वर्णगत योग्यता को वरीयता देना हितकर है। राजनीति में, योग्यता होने पर, परिवार के कारण निन्दनीयता नहीं होनी चाहिए। परंपरा के अनुसार रहकर अपनी योग्यता को बढ़ाने वाले नागरिक तथा ऐसा अवसर देने वाली राजकीय व्यवस्था ही भारत को विकसति देश बनाने में सक्षम हैं।

(160)
सामाजिक संगठन

आर्यसमाज की स्थापना भारतीय समाज में एक विशेष घटना थी। महर्षि दयानंद सरस्वती काशी मे भी अपने संप्रदाय को स्थापित करने लिए वहां

सनातनी लोगों से शास्त्रार्थ करने पहुंचे। दुर्गा कुंड के पास शास्त्रार्थ का स्थल निश्चित हुआ, जो अब भी सुरक्षित है। काशी नरेश को निर्णायक बनाया गया। काशी के विद्वानों के पक्ष में सरस्वती पुत्र पंडित शिव कुमार शास्त्री भी उपस्थित थे। उन्होंने अपने शिष्यों को शास्त्रार्थ केलिए आगे कर दिया।

आरंभ में साक्ष्य और प्रमाण का निश्चय करने का विधान है। सरस्वती जी ने कहा कि केवल वेद प्रमाण माना जायेगा। सनतनी लोगों ने कहा कि वेद सर्वोपरि है किन्तु जो बातें वेद में नहीं लिखी हैं, उनके विषय में सम्पूर्ण वैदिक साहित्य और सत्य को प्रकाशित करने वाले तर्क भी मान्य होंगे। उपवृंहण से वेदार्थ स्पष्ट होता है। इस पर सरस्वती जी सहमत नहीं हुये। तब सनातनी पक्ष ने पूछा कि वेद में कहां लिखा है कि मैं ही प्रमाण हूं, अन्य कुछ नहीं। इस पर सरस्वती जी निरुत्तर रहे और आक्षेप करते हुये शास्त्रार्थ से विरत हो गये। दोनों पक्ष अपनी विजय मान लिए। काशी में शंकराचार्य को भी शिष्य बनना पड़ा था।

सनातन और आर्य समाज दोनों की आवश्यकता हिन्दू समाज को है। सनातन धर्म में अभ्युदय और निःश्रेस् दोनों के सिद्धि की साधना है। तर्क से परे, गूढ़ कर्मकांड भी इसके अंग हैं। पंचयज्ञ में देवता, पितर और ऋषियों की तुष्टि का रहस्यात्मक लाभ है। अनेक बातें सनातन धर्म में हैं जिन्हें तर्क से नहीं विश्वास से जाना जा सकता है। इस धर्म में स्मृतियों का विशेष स्थान है। मनु स्मृति में संशोधन करके, पाराशर स्मृति में, पुनर्विवाह की व्यवस्था करना, 'युगरूपा हि ते द्विजाः' कह कर द्विजाति का सम्मान सुरक्षित रखना जैसे समयानुकूल परिवर्तन भी सनातन धर्म में हुए हैं।

आर्यसमाज में तर्कसम्मत व व्यवहार्य क्रियाओं का समावेश है। यह धर्म के एकांग-अभ्युदय की व्यवस्था के लिए पर्याप्त है। इसका सबसे बड़ा लाभ सामाजिक संगठन है। जातिप्रथा के भेदभाव को हटाकर सबको आर्य बनाना बड़ा हितकर रहा है।

अन्त में, निर्णयात्मक रूप से कहा जा सकता है कि सामाजिक संगठन और एकता के लिए सनातन और आर्यसमाज दोनों का संवर्द्धन आवश्यक है। दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं। जो उत्तम सनातन धर्म के कठोर नियमों को नहीं करना चाहते हैं, वे हिन्दू रह कर, आर्य बनकर सम्मानित रह सकते हैं।

इससे जाति प्रथा आरक्षण तथा एस-सी., एस-टी. नियम सभी समाप्त हो जायेंगे। बहुत से विवाद शांत हो जायेंगे। समाज में समरसता और एकता का यह सर्वोत्तम उपाय है।

(161)
शिक्षानीति

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 51ए में नागरिकों के मूल कर्तव्यों का उल्लेख है। इसमें एक आदर्श नागरिक के सभी गुणों का सन्निवेश है। देशभक्ति, संविधान के प्रति निष्ठा, उच्च विचार, भाईचारा की भावना, संस्कृति के प्रति निष्ठा आदि अनेक सद्गुणों को मौलिक कर्तव्य बताया गया है। विश्व में शायद ही किसी देश के संविधान में ऐसा प्रविधान हो। यह अनुच्छेद एक आदर्श निर्धारित करता है जिसे न करने पर दंड का उल्लेख नहीं है। यह भावनाओं के स्वतः स्फुरण के लिए प्रेरणा स्वरूप है। इन भावनाओं को ग्रहण करने के लिए संविधान को पढ़ने की आवश्यकता नहीं है। कुछ अन्य उपाय अपेक्षित हैं।

प्रथम- नागरिकों के मूल अधिकार सुरक्षित होने चाहिए। राजकीय व्यवस्थाओं के कारण, समानता और स्वतंत्रता आदि के विषय में, उन्हें असंतुष्ट और कुंठित न किया जाय। अधिकार के बिना कर्तव्य अपूर्ण रहता है।

द्वितीय- समाज और शासन के नियामक लोगों का आचरण, व्यक्तिगत और सार्वजनिक क्षेत्र में वैसा होना चाहिए जैसा हम नागरिकों का मौलिक कर्तव्य समझते हैं।कथनी करनी में एकता स्पष्ट होनी चाहिए।

तृतीय- शिक्षा के क्षेत्र में मौलिक परिवर्तन किया जाय। मैकाले की शिक्षा व्यवस्था में यथेष्ट संशोधन किया जाय। अर्थ और काम को प्राथमिकता न देकर, चरित्र निर्माण और उदात्त संस्कारों के आधान की शिक्षा दी जाय। भारतीय संस्कृति को पुनः स्थापित किया जाय। बालू पर निर्माण की तरह तात्कालिक विकास नहीं, स्थाई आधार पर राष्ट्रनिर्माण किया जाय। इसके लिए स्वार्थ और सत्ता का लोभ छोड़ना पड़ेगा। प्राचीन शिक्षा पद्धति से बहुत कुछ ग्रहण किया जा सकता है। शिक्षा के क्षेत्र में क्रांति होने पर नागरिक स्वतः अपना कर्तव्य पालन करेंगे। वे समाज को जाग्रत और शासन को ईमानदार बनाने में समर्थ होंगे। तब अधूरी स्वतंत्रता की जगह पूर्ण स्वराज्य स. 2047 तक में मिल सकता है।

(162)
अधूरी आजादी

अंग्रेजों के शासन काल में काशी मे तैलंग स्वामी नामक एक सिद्ध पुरुष रहते थे। वे वृद्धावस्था में यहां आये और अस्सी वर्ष तक, नग्न जंगम शिव के रूप में, सर्वमान्य संत रहे। एक बार दशाश्वमेध घाट पर, तत्कालीन कलेक्टर की पत्नी ने उन्हें नग्न टहलते देखा तो उन्हें तुरंत जेल भिजवा दिया। थोड़ी ही देर बाद वे पुनः उस महिला के सामने नग्न हालत में पहुंच गये। महिला क्रुद्ध होकर उन्हें पुनः कैद कराई। तब, पुनः बाहर आकर, उन्होंने महिला को समझाया कि जाओ अपना काम करो। सब के ऊपर तुम्हारा शासन नहीं है। इसी तरह रमण महर्षि, हरिहरानंद, परमहंस जी जैसे तपस्वी लोग बड़े बनने वालों को सबक तथा सामान्य लोग़ों को प्रेरणा देते रहे। अब इस धरती की उर्वरा शक्ति क्षीण हो चली है। अब के तपस्वी जेल से बाहर नहीं आ पाते हैं। तब, बाह्य रूप से परतंत्र होने पर भी, हम आन्तरिक रूप से स्वतंत्र रह सकते थे। अब बाह्य रूप से स्वतंत्र किन्तु मानसिक रूप से गुलाम बनते जा रहे हैं। इस तरह, आजादी और गुलामी, शारीरिक और मानसिक के भेद से, दो स्वरूप में होते हैं। यह भेद समाज और देश के लिए भी, बाह्य और आंतरिक रूप में, तथैव है।

स्वतंत्रता के संग्राम की भावना का अभाव, आरंभ से ही और अब भी पद प्रतिष्ठा तथा सत्ता के शीर्ष पर पहुंचने की महत्वाकांक्षा, देश की अपेक्षा दलीय स्वार्थ को वरीयता, भारतीय संस्कृति का अपमान, शिक्षा, भाषा, कानून और संविधान के विषय में वाह्य प्रभाव से ग्रस्तता, अंधभक्ति और व्यक्तिवाद को प्रोत्साहन, लोकनीति और समाज की घोर उपेक्षा, योग्यता का अनादर, परस्पर अविश्वास, नेताओं का अपने भ्रष्टाचार को कर्मचारियों पर आक्षिप्त करना, बेइमानी आदि समस्याओं से ग्रस्त होने पर हमारी आजादी अधूरी है। पराधीनता के लक्षण प्रबल हैं।

लोकमान्य तिलक, मालवीय जी, गांधी जी आदि विचारकों और स्वतंत्रता के लिए आत्माहुति देने वाले सेनानियों की भावना के अनुरूप राष्ट्र-निर्माण करने पर पूर्ण आजादी की अनुभूति होगी।

(163)
भारतीय नारी

भारतीय संस्कृति में विवाह संस्कार का बड़ा महत्व है। इसके तीन उद्देश्य हैं--रति, संतति और धर्म। रति एक सहज आवश्यकता है जो सभी योनियों मे पाई जाती है। मानव जाति नें संतति और परिवार को भी आवश्यक बनाया। भारतीय ऋषियों ने इस संबंध से धर्मपालन की व्यवस्था देकर इसे संस्कार का स्वरूप दिया और स्त्री व पुरुष को आजीवन एक दूसरे का सहयोगी बनाया। दोनों की शारीरक व मानसिक क्षमता तथा स्वभाव के अनुसार कार्यविभाजन भी किया गया। मनुस्मृति के नीचे लिखे श्लोकों से ज्ञात होगा कि स्त्री को कितना सम्मान और सुरक्षा दी जाती रही है--

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः।।
शोचन्ति जामिनो यत्र विनश्यत्याशु तत्कुलम्।
न शोचन्ति तु यत्रैताःवर्धते तद्धि सर्वदा।।

भावार्थ है कि जहाँ नारी का सम्मान होता है वहां सुख-समृद्धि में वृद्धि होती है तथा जहां घर की स्त्रियां अभावजन्य शोक में रहती हैं वहां सभी क्रियायें निष्फल होती हैं।

इतने से ही स्पष्ट है कि नारी को जितनी सुरक्षा और जितना सम्मान भारतीय संस्कृति में है उतना विश्व मे असंभव है। नारी का एकमात्र कार्य पतिपरायणा रहकर गृहिणी के पद को सुशोभित करना बताया गया था। उसके बाद क्षमता और योग्यतानुसार अन्य कार्य भी स्त्रियों को करने दिया जाता था।

सुरक्षा तथा पातिव्रत धर्म के निर्वाह के लिए स्त्री के आचार-व्यवहार तथा वेश-भूषा को समयोचित रखने का उचित विधान है। स्त्री के लिए यह दोनों व्यवस्था परमावश्यक मानी गई हैं। यह बंधन नहीं बल्कि उनका सम्मान सुरक्षित रहने की व्यवस्था है जो स्वेच्छया आचरणीय हैं।

आजकल नारी का सम्मान और गौरव बढ़ाने के राजकीय स्तर से हो रहे मिथ्या प्रचार से संस्कृति का संकट बढ़ रहा है। भारतीय नारी को अमेरिकन महिला के रूप में स्वतंत्र बनाकर गौरवान्वित करने पर यहां पारिवारिक विघटन

अवश्यंभावी है। विवाह को केवल रति के लिए बनाने पर हमारी संस्कृति ही नष्ट हो जायेगी। बहुत से लोग, केवल रति के लिए, विवाह ही नहीं करना चाहेंगे। धन खर्च करके कामेच्छा की पूर्ति हो सकती है। विवाह करके कानूनी बन्धन में कोई नहीं पड़ना चाहेगा। हमारा आचरण पशुवत हो जायेगा।

परिवार, समाज और भारतीय संस्कृति को सुरक्षित रखने के लिए नारी को स्वच्छंद करने का प्रयास बन्द किया जाय। यह नारी का सम्मान नहीं बल्कि उसका सुनियोजित अपमान है। संस्कृति को बिगाड़ने में सिनेजगत का बहुत प्रभाव, ब्रण पर विस्फोट तुल्य है। अश्लीलता और नग्नता को बढ़ावा देने के बजाय इस पर नियंत्रण होना चाहिए। शास्त्र और परंपरा के अनुसार भारतीय बने रहने में ही नारी का सबसे बड़ा सम्मान और गौरव है।

(164)
कथनी-करनी

तुलसी दास ने कथनी और करनी में भेद की दृष्टि से तीन तरह के लोगों को लिखा है - जनि जल्पना करि सुजस नासहिं नीति सुनहि करहि क्षमा।

संसार महं पूरुष त्रिविध पाटल रसाल पनस समा।।
एक सुमनप्रद एक सुमन फल एक फलइ केवल लागहीं।
एक कहहिं कहहिं करहिं अपर एक करहिं कहत न बादहीं।।- लंकाकांड

केवल फूल देने वाले टेसू, फूल और फल दोनों देने वाले आम तथा केवल फल देने वाले कटहल के पौधों की तरह केवल कहने वाले, कहने और करने वाले तथा बिना कहे करके दिखाने वाले तीन तरह के मनुष्य होते हैं। इन तीनों में, अनावश्यक बोलने की अपेक्षा कर्म करके दिखाने वाला अधिक अच्छा होता है क्योंकि बोलना निष्फल भी होता है।

बोलने वालों में सबसे अधिक खतरनाक वे हैं जो कहते अच्छा हैं और करते ठीक उसका उलटा हैं या वाणी द्वारा विश्वास उत्पन्न करके कुमार्ग पर चला देते हैं। गलत काम और उपदेश के परिणाम से उनका छल उजागर होता है। उनके लिये सचेतक बालकाण्ड में है--

मन कपटी तन सज्जन चीन्हा।
आपु सरिस सबही चह कीन्हा।।

जो व्यक्ति जैसा है वह वैसा सब को बनाना चाहता है। उससे अच्छाई की आशा मूर्खता है।

फरइ कि कोदों बालि सुसाली।
मुक्ता प्रसव कि संबुक ताली।।

कोदों के पेड़ में सुगंधित चावल नहीं होगा। गड्ढे के घोंघा से मोती नहीं निकलती है।

इस पूरे लेखन का संदेश है कि आजकल स्वार्थी लोगों के कथनी और करनी में सामंजस्य का आकलन करने तथा धूर्तों और पाखण्डियों की बातों में विश्वास करने में सतर्क रहना आवश्यक है। प्रभावशाली व्यक्तियों की सही जीवनी प्रकाशित रहनी चाहिए। उस व्यक्ति के निजी जीवन, स्वभाव, सत्य और न्याय के प्रति निष्ठा आदि तथा क्रियाकलापों को प्रामाणिक ढंग से जानना बहुत उपयोगी है। 'सोना परखिय एकबार पुरष परखिये बारबार'। अंधविश्वास और अंधभक्ति को त्यागने में अपना और समाज दोनों का हित है।

(165)
शिक्षक दिवस

शिष्य के लिए--

बंदउं गुरुपद पदुम परागा।
सुरुचि सुबास सरस अनुरागा।।
अमिय मूरिमय चूरन चारू।
समन सकल भवरुज परवरू।।

गुरु के लिए--

हरइ शिष्य धन शोक न हरई।
सो गुरु घोर नरक में पड़ई।।

ऐसा नहीं--

गुरु सिख बधिर अंध कर लेखा।
एक न सुनइ एक नहिं देखा।।

(166)
ज्ञानयोग की योग्यता

इमं विवस्वते योगं प्रोकवानहमव्ययम्।
विवस्वान्मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत्।।
एवं परम्पराप्राप्तमिमं राजर्षयो विदुः।
स कालेनेह महता योगो नष्टः परंतप।। (गीता-4/1,2)

इन श्लोकों से स्पष्ट है कि गीता के दूसरे और तीसरे अध्याय में वर्णित कर्मयोग राजर्षियों की विद्या थी। अर्जुन क्षात्रधर्म का पालन करने योग्य थे किन्तु, अन्य कारणों के साथ ही, ब्राह्मण के लिए विहित ज्ञानयोग की बात करके, युद्ध से विरत होना चाहते थे। कृष्ण ने उनकी कमी को समझकर कहा – 'अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च वादसे। गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः।।' अर्थात् अर्जुन तुम बात ज्ञानयोग की कर रहे, लेकिन चिन्ता अज्ञानी की तरह कर रहे हो। यह मोह की स्थिति है। ऐसा कहने के बाद भी कृष्ण ने बारबार, 'नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते', आदि कहकर ज्ञानमार्ग की प्रशंसा किया है। तब अर्जुन ने संशयग्रस्त होकर पूछा कि – 'यच्छ्रेय एतयोरेकं तन्मे ब्रूहि सुनिश्चितम्।' इस प्रश्न के उत्तर में कृष्ण ने अर्जुन को जो श्रेयस्कर था उस कर्मयोग का आचरण करने के लिए उपदेश दिया और आश्वस्त किया कि इस योग के द्वारा भी संन्यास का फल और ज्ञानमार्ग की विशिष्ट योग्यता भी मिल सकती है।

गीता में केवल ब्राह्मण और क्षत्री के लिए ज्ञानयोग और कर्मयोग का वर्णन ही नहीं है बल्कि पूरी वर्णव्यवस्था केलिए कल्याण का मार्ग बताया गया है। स्वधर्म का पालन करने और उसके फल को ईश्वरार्पण कर देने पर सभी व्यक्ति सिद्धि को प्राप्त कर सकते हैं।

'यतः प्रवृत्तिः भूतानां येन सर्वमिदं ततम्।
स्व कर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः।।'

इस तरह ज्ञानमार्ग तथा कर्ममार्ग और उसके लिए सहायक ईश्वरार्पण रूपी भक्ति का उपदेश करने वाली गीता, हिन्दू ही नहीं मानवमात्र के लिए उपकारक धर्मग्रंथ है।

(167)
मनःप्रसाद

किसी सात्विक विषय पर मन के एकाग्र होने पर अंतःकरण निर्मल होकर प्रसन्न हो जाता है। प्रसन्नता सत्व गुण का ही धर्म है। राजस या तामस विषय पर मन की एकाग्रता से मलिनता आक्रांत करती है। तब चित्त व्यग्र होता है। प्रसन्नता का संबंध अंतःकरण से है, अतः वास्तव में, चित्त की प्रसन्नता की अनुभूति बुद्धि से होती है। मन की एकाग्रता प्राथमिक आवश्यकता है, अतः मनःप्रसाद भी कहा जाता है। 'यस्मान्नऋते किञ्चन कर्म क्रियतेतन्मेमनःशिवसंकल्पमस्तु।'

किसी भी साधना में मनः-प्रसाद का बड़ा महत्व है। अतः सभी सम्प्रदायों मे इसको प्राथमिकता दी गई है। गीता में मानसिक तप -

मनःप्रसादः सौम्यत्वं मौनंमात्मविनिग्रहः।
भावसंशुद्धिरित्येतत्तपो मानसमुच्यते।। 17/16

इसका लाभ-

प्रसादे सर्वदुखानां हानिरस्योपजायते।
प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते।। 2/65

इसका उपाय भी बताया है-

रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन्।
आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति।। 2/64

इस तरह कर्मयोग ही मनःप्रसाद का हेतु भी गीता में बताया है।

भक्तों ने भजन या मंत्रजप, ज्ञानियों ने आत्मचिंतन तथा विविध सम्प्रदायों ने अपने अपने विशेष उपाय बताया है। योगवासिष्ठ में मन को समाप्त करने के लिए लिखा है- 'स जीवति मनो यस्य मनने न जीवति।' पातंजल योग में चित्तप्रसाद मे कालुष्यों को बाधक माना है। उन कालुष्यों को हटाने के लिये उपाय बताया है –'मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षाणां सुखदुखपुण्यापुण्यविषयाणां भावनातश्चित्तप्रसादनम्।' अर्थात् किसी के सुख में ईर्ष्यादि न करके उससे मैत्रीभाव का चिंतन करें। इसी तरह किसी के दुख में उसे पापी या घृणास्पद न समझकर, करुणा की भावना, उसके पुण्य मे ईर्ष्या नहीं मुदिता की भावना तथा

उसके पाप में बदला लेने या घृणा की भावना न करके, उपेक्षा करने का प्रयास करने पर चित्त प्रसन्न रहता है।

प्रसन्न चित्त होना विजय या सब तरह की सफलता का मूलाधार और सुलक्षण है। इसके लिए प्रयास अपने स्वभाव और सम्प्रदाय के अनुसार करना स्वधर्म है।

(168)
हिन्दी दिवस

राष्ट्रवाद का नारा लगाने वाले, गुलामी के चिन्ह समाप्त करने वाले तथा संविधान का सम्मान दिखाने वाले लोगों को भारत की अस्मिता व देश की संम्प्रभुता की रक्षा तथा शिक्षा और शासन में क्रांतिकारी परिवर्तन हेतु हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में प्रतिष्ठित करने का संकल्प लेने का दिन आज है। केवल हिन्दी दिवस की बधाई दे देना हिन्दी का उपहास है। राष्ट्रभाषा का सम्मान प्रत्येक स्वतंत्र देश कर रहा है। हम भी स्वतंत्र बनें।

(169)
साधन और साध्य

जादूगर के लिए जादू दिखाना साधन है और धन कमाना साध्य है। इसी तरह नर्तकी के लिए कला और अंग प्रदर्शन साधन है और धनार्जन साध्य है। अर्थ और काम की सिद्धि के लिए, इसी तरह के, अनेक अप्रशस्त साधनों से सफलता मिल सकती है। आज के समय में, ऐसे लोगों के प्रशंसक भी बहुत मिलते हैं। बाद में धन को साधन बनाकर बाहुबली और अपराधी भी स्वबस किये जा सकते हैं। प्रशंसक, बाहुबली, अपराधी तथा अर्थशक्ति को साधन बनाकर सत्ता को साध्य बनाना और, तिकड़म में कुशलता होने पर, उसमें सफल होना संभव हो जाता है। ऐसी सत्ता का व्यक्ति, समाज व देश के लिए कष्टकर होना स्वाभाविक है। इसी के प्रभाव से बाल्यकाल से ही निराशा व पथ-भ्रष्टता आती है। तभी देखा जाता है-

मातुपिता बालकन बोलावहिं
उदर भरइ सोइ पाठ सिखावहिं।।

व्यक्ति,समाज और राष्ट्र तीनों के लिए प्राप्तव्य उत्कृष्ट मूल्यों को विचारकों ने निर्धारित कर रखा है। मूर्ख जनता के रहते सुधार नहीं होगा, अतः, जीवन की प्रारंभिक अवस्था से लेकर, उत्तरोतर उच्च मूल्यों को साध्य बनाकर चलने वाले सदाचारी नागरिकों को पैदा करने वाली शिक्षा नीति की आवश्यकता भारत में है। रोजगार परक शिक्षा सोलह वर्ष की उम्र के बाद दें। इसके पहले, अन्य विषयों के साथ, नैतिकता और जीवन के मूल्यों का बोध कराने की अनिवार्य शिक्षा देनी चाहिए। साधन अच्छा होने पर साध्य कल्याणकारी होगा।

(170)

स्थाई सम्पत्ति

स्थाई सम्पत्ति वह है जो जीवन पर्यंत, या उसके बाद भी, चिरकाल तक बनी रहे। सूक्ष्मता में स्थायित्व होता है और स्थूल शीघ्रतर नष्ट होता है। धर्म, ज्ञान, वैराग्य, विवेक, आदि अन्तःकरण की सूक्ष्म सम्पत्तियां जन्मांतर तक साथ देती हैं। घर, जमीन, द्रव्य, पद, सम्मान आदि की प्राप्ति अल्पकालिक है। प्रकृति में भी देखें- समुद्र, पहाड़ आदि स्थूल पदार्थ समयचक्र में नष्ट होते या रूप परिवर्तन करते रहते हैं किन्तु जल, अग्नि, वायु तथा आकाश युगों से स्थिर बने हैं। प्रकृति के नियमों से सभी शासित हैं। अतः इससे शिक्षा लेनी चाहिए।

नश्वर सम्पत्ति से तृप्ति नहीं मिलती है। 'न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यः-कठोपनिषद। न जातु कामः कामनामुपभोगेन शाम्यति-मनुस्मृति।' इस तरह के आर्ष वचनों से भी शिक्षा लेकर, शरीर यात्रा मात्र के लिए स्वार्थ अर्थार्जन करना बुद्धिमानी है। व्यक्ति हो, परिवार का स्वामी हो, उद्योगपति हो, समाज का मुखिया हो या राज्य का संचालक हो, सभी के लिए व्यक्तिगत सम्पत्ति का महत्व एक समान है। भारतीय संस्कृति में सन्यास ग्रहण तथा राजाओं द्वारा विश्वजित यज्ञ में सर्वस्व दान करने का वर्णन मिलता है। यह दान सूक्ष्म सम्पत्ति को पाने के लिए किया जाता था। 'मृत्युः सर्वहरश्चाहं'-गीता। सब कुछ मृत्यु द्वारा छीने जाने पर, लौकिक और पारलौकिक दोनों दृष्टियों से विपन्न होने की अपेक्षा मूल्यवान स्थायी सम्पत्ति खरीद लेना श्रेयस्कर है।

(170ख)

गुणों से श्रेष्ठता

गुणैरुत्तमतां याति नोच्चैरासन संस्थितः।
प्रासाद शिखरस्थोऽपि किं काको गरुड़ायते।।

चाणक्य नीति।।सुभाषित संग्रह।।

उच्चासन पर बैठने से नहीं गुणों से श्रेष्ठता होती है। राजमहल के शीर्ष पर बैठने से कौवा गरुड़ नहीं बन जाता है।

(171)

असंभव की कामना

संस्कारहीन, सत्संग और शास्त्रज्ञान से रहित तथा अधार्मिक व्यक्ति असंभव की कामना करता है। उसके विषय मे महाभारत में है-

धर्मस्य फलमिच्छन्ति धर्मं नेच्छन्ति मानवाः।
न पापफलमिच्छन्ति पापं कुर्वन्ति यत्नतः।।

अर्थात् धर्म का पालन न करना किन्तु धर्म का फल चाहना तथा पाप का फल न चाहना किन्तु प्रयत्नपूर्वक पाप करना, यह मूढ़ लोगों का कार्य है। असंभव की इच्छा करनेवला ऐसा व्यक्ति भी, दुखी होने पर, अपनी कमी नहीं देखता है। वह समय, नक्षत्र, भाग्य, उपकरण, सहायक या ईश्वर को दोष देता है। तुलसीदास-

सो परत्र दुख पावई सिर धुनिधुन पछताइ।
कालहिं कर्महिं ईश्वररहिं मित्थ्या दोष लगाइ।।

संदेश- कर्मवाद में विश्वास रक्खें।

(172)

ईश्वर चिंतन

आत्मचिंतन मे निर्विघ्नता के लिए भी ईश्वरचिंतन करने की उपयोगिता लगती है। वैराग्य के दृढ़ होने के पहले, सांसारिक वाधाओं को समाप्त करने के लिए नहीं, उन्हें हटाने और अविचल रहकर सहन करने की क्षमता बनी रहने के लिए ईश्वरीय सहायता की याचना करनी पड़ सकती है। मामनुस्मर युद्ध च।

(173)

गुणदोष श्रृंखला(पदक्रम-1)

एक भी सद्गुण का पूर्णरूप से निर्वाह करने में सभी सद्गुणों को पूर्णरूप से ग्रहण करना पड़ता है। इसी तरह एक भी दुर्गुण से पूर्णरूप से ग्रस्त होने पर समस्त दुर्गुणों से ग्रस्त होना अवश्यंभावी है। उलझे हुए तागे के गोले की तरह यह सब आपस में संश्लिष्ट हैं। एक कोना को ठीक से पकड़ने पर समस्त गोला पकड़ में आता है। इसीलिए कुमार्ग पर पैर रखने पर उत्तरोत्तर अधोपतन और सन्मार्ग पर चल पड़ने पर उत्तरोत्तर उत्कर्ष होता ही है। 'well begun is half done' - यानी, आरंभ ठीक से करना आधा काम है, यह कहावत है। लेकिन, वास्तव में सत्य संकल्प के साथ आरंभ करना ही, गंगावतरण की तरह, कार्य की पूर्णता है।

(174)

गुणदोष श्रृंखला (पदक्रम-2)

ऐसा देखा जाता है कि बाल्यावस्था में जो गुण या दोष व्यक्ति में प्रवेश करजाते हैं, वे ही युवावस्था में विकसित होते हैं और वृद्धावस्था में दृढ़मूल होकर प्रगट होते हैं। गुणों को प्रकाशित करना और दोषों को छिपाना सामान्य आदत होती है। शरीर के सबल रहने पर, बुद्धि प्रबल रहती है। उस समय बुद्धि में मनोवेग को रोकने या दोष को छिपाने और पाखंड द्वारा अपने को गुणान्वित दिखाने की क्षमता होती है। शरीर के दुर्बल होने पर बुद्धि शिथिल हो जाती है किन्तु मन पूर्ववत वेगवान रहता है। उस समय वास्तविक स्वभाव प्रगट होता है। अच्छी या बुरी जो भी सहज वृत्ति है, वह प्रबलतर होती जाती है। तब बुरी आदतों को छिपाना दुर्बल बुद्धि के लिए संभव नहीं रह जाता है। उस समय विख्यात धर्माचार्यों तथा सर्वमान्य राजनेताओं की नग्नता भी सार्वजनिक हो जाती है। तत्काल दण्ड या इतिहास के पन्ने में निन्दनीय घोषित होने पर, उनकी वृद्धावस्था नारकीय हो जाती है।

आयुर्वेद में आयु का विभाजन पापायु और पुण्यायु दो तरह से किया गया है। आयु के जिस भाग में पुण्यार्जन हो सके वह पुण्यायु है और जिस भाग में पापार्जन हो वह पापायु है। जीवन के आरंभ में ही संगति, शिक्षा या प्रबल

संस्कार के कारण दुर्गुणों का आधान होने पर पूरा जीवन तथा स्पष्टतः वृद्धावस्था पापायु बन के रहती है। सद्गुणों का प्रवेश होने पर जीवन पुण्यायु होता है। पापायु और पुण्यायु का अनुभव वृद्धावस्था में गंभीरतापूर्वक होता है। उस समय पश्चाताप से बचने के लिए सद्गुण ही वरणीय हैं।

अष्टमासेन तत्कुर्यात् येन वर्षा सुखी भवेत्।
यावज्जीवं च तत्कुर्यात् येन चान्ते सुखी भवेत्।। महाभारत

(175)

गुणदोष श्रृंखला (पदक्रम-3)

इस विषय पर समष्टिगत दृष्टि से भी विचार हो सकता है। व्यक्ति के विषय में संचालक व्यवहार का आधारभूत मन और स्वभाव का प्रेरक बुद्धि स्वरूप पुरुष स्वयं होता है। व्यक्तियों के समूह से समष्टि समाज और छोटे संगठन बनते हैं। समष्टि का आधार देशकाल (प्रकृति) है जिसका संचालक समष्टिगत चैतन्य (ईश्वर) है। मानव व्यवहार से प्रकृति निर्मल या प्रदूषित होती है। उसी में उपलब्ध गुणदोष युक्त सामग्री से, निष्पक्ष जगन्नियन्ता समष्टि का संचालन करता है। अतः प्रकृति में व्याप्त मनुष्यों के सदाचार और दुराचार के प्रभाव को एक व्यक्ति निष्क्रिय नहीं कर सकता है। विकृति होने पर, परिवर्तन के लिए युगपुरुष की आवश्यकता होती है। उस समय युगपुरुष के न होने पर, उसकी जगह, पाखंड करके बहुत धर्माचार्य, तांत्रिक, जनता के नेता, प्रशासक आदि समाज को बहकावे में डालकर, स्वार्थ की सिद्धि हेतु, समस्याओं को जटिलतर बनाते हैं। उस समय, चोर ही पुलिस का वेश पकड़कर चोर को खोजता है और किसी निर्दोष को अभियुक्त बना देता है, शासक अपना मुख्य उत्तरदायित्व छोड़कर प्रदर्शन के कार्यों से मूढ़ जनता को सम्मोहित करता है, न्याय और सत्य की तात्कालिक हितसाधक परिभाषा बनाकर योग्य का तिरस्कार और अयोग्य की पूजा होती है, बाहुबली और भ्रष्ट जिताऊ उम्मीदवार जननायक हो जाता है, शीर्षपदस्थ नेता राजकीय कर्मचारियों के माध्यम से राजकीय कोष का अपहरण कराकर, उन्हें ही दोषारोपित कर देते हैं। यह कार्य उसी तरह है जैसे; नहर निकालकर पानी का शोषण करने वाला जल में रहने वाली मछली को शोषण का कारण बताये। तब पुराने शास्त्रों की अवहेलना और मनचाही धर्म की प्रतिष्ठा आदि अनेक अनर्थकारी कार्य-व्यापार चल पड़ते हैं।

देशकाल और प्रकृति के प्रदूषण और उत्तरोत्तर विकृति पूरे विश्व की समस्या है, किन्तु भारत जैसे अशिक्षित या अर्धशिक्षित तथा गरीब देश में, जहाँ समाज मृत है और देश के सामने अनेक समस्यायें हैं, स्थिति विकटतर है। यहां पाखंड अधिक है। ऐसा होने पर भी निराशा को छोड़ने के लिए पर्याप्त संबल हमें उपलब्ध है। हमारी समस्या के मूल में अपनी संस्कृति का तिरस्कार है। अपने मूल वासस्थान पर पहुंचकर हम निरापद हो सकते हैं। तब युगपुरुष का भी प्रादुर्भाव संभव है। यह गंभीरतापूर्वक विचारणीय है।

क्रमशः-

(176)
गुणदोष श्रृंखला (पदक्रम-4)

व्यक्ति, परिवार, कुल-जाति तथा वृहत समाज यह चार प्राकृतिक इकाइयां मानव-जीवन के विकास में सहायक हैं। भौगोलिक और ऐतिहासिक विषयों में भेद के कारण विश्व-समाज ही देश, राष्ट्र, संस्कृति और धर्म की मानव निर्मित ईकाइयों में भी विभाजित है। इन इकाईयों के पारस्परिक संबंधों को व्यवस्थित रखने के लिए प्रशासन की कल्पना समाज ने किया। प्रशासन भी समाज द्वारा स्थापित, उसी का एक अंग है। व्यक्ति से लेकर समाज तक की चारों इकाइयों के सद्गुणी रहने पर शासन पर समाज का नियंत्रण रहता है। उनके सदोष होने पर शासन ही समाज पर तानाशाही नियंत्रण करने लगता है। तब शासन अंगी हो जाता है और समाज उसका अंग बन जाता है। परिणामतः संस्कृति, धर्म और राष्ट्र विकृत हो जाते हैं। इनके दुष्ट होने पर देश तथा मानव-जीवन के लिए उपयोगी सभी इकाइयों में अनेक समस्याएं उत्पन्न होती है। इन्हें दूर करने के लिए सभी अंगों के प्रयास से प्रशासन को दोषमुक्त करना पड़ता है।

इस अध्ययन का विनियोग समाज को स्वस्थ और शासन को दोषरहित करने में हो सकता है। सबसे आवश्यक है कि विकृत राजनीति के कोढ़ से अधिक से अधिक लोगों को दूर रहने और समाज को राजनीति के प्रभाव से मुक्त करने का प्रयास हो। कुछ कार्य करके स्वावलम्बी हुए बिना किसी व्यक्ति को कोई दल सदस्य या कार्यकर्ता न बनायें। राजनीति भ्रष्ट लोगों का चारागाह न रहे। लोगों को प्रेरित किया जाय, वे किसी दल के दलदल में फंसकर मानसिक गुलाम न बनें। इस तरह राजनैतिक प्रदूषण पर नियंत्रण होगा। लोगों को जाति-धर्म के

आधार पर नकारात्मक चिंतन छोड़कर योग्यता को आदर देने की शिक्षा दी जाय जिससे व्यापक दृष्टि वाले महापुरुष का प्रयास सफल हो सके। इस तरह के बहुत से उपाय चिंतकों ने बताया है। शासन स्तर से सुधार का संकल्प लेनेपर ही सभी विचार सार्थक होंगे। एक दुष्ट व्यक्ति के पाप का फल बहुत लोगों को भोगना पड़ सकता है तथा एक महापुरुष के पुण्यप्रताप से सारा समाज उपकृत हो सकता है। विवेकशक्ति वाले, तपस्वी, त्यागी, सत्यनिष्ठ, न्यायप्रिय, नीतिविद जैसे गुणों से युक्त एक कौटिल्य या सुकरात के आने का मार्ग खुला रखने के लिए गुणदोष में भेद का ज्ञान और योग्यता का आदर करना ही शुभ होगा।

(177)

जातीय स्वाभिमान

वर्णव्यवस्था किसी न किसी रूप में पूरे विश्व में है। भारत मे इसके कुछ विस्तृत नियम निर्धारित हैं। जाति-व्यवस्था इस धरती के डी.एन.ए. में है जिसे सहस्त्राधिक वर्षों के प्रयास से नहीं समाप्त किया जा सका तथा भविष्य में भी अंगद का पैर दृढ़ रहेगा। ब्राह्मण ही नहीं, सभी जातियां अपने स्थान पर बनी रहना चाहती हैं, भले कुछ लोग दूसरी जाति का विरोध करते हैं। राजकीय स्तर से समाप्त करने पर भी सामाजिक स्तर से यह व्यवस्था, व्यवहार में, बनी रहेगी। ऐसा आकलन है तो जातिव्यवस्था के दुर्गुणों को दूर करने तथा अपनी जाति के सद्गुणों को बढ़ाने के लिए जातीय स्वाभिमान को जाग्रत करना उपयोगी होगा। इसके लिए सभी को अपना मूल और अपनी विशेषता को जानना चाहिए।

ब्राह्मण का स्वभिमान-

ब्राह्मणस्य शरीरोऽयं क्षुद्रकामाय नेष्यते।
कृच्छ्राय तपसे चेह प्रेत्यानन्त सुखाय च।। आदि।।

ब्राह्मण की शरीर से क्षुद्र काम नहीं बल्कि इस लोक में तपस्या करके परलोक में अनंत आनन्द प्राप्त करना है। यह संभव है।

क्षत्री का स्वाभिमान-

क्षतात् त्रायते इति क्षत्रियः।

तथा-

दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम्।।

हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्षसे महिम्।। आदि।।

सामाजिक व्यवस्था (धर्म) को क्षति से बचाना, दान, प्रभुता की भावना, राज्य-सुख या स्वर्गसुख आदि पाना संभव है।

वैश्य का स्वाभिमान-

धनाद्धर्मः ततः सुखम्।

धनार्जन और उससे विविध धार्मिक कार्य करके पुण्यार्जन से सुखी होना संभव है।

शूद्र का स्वाभिमान--

सेवा धर्मो परम गहनो योगिनामप्यगम्यः।

राम ने हनुमानजी से कहा-

प्रति उपकार करउं का तोरा। सन्मुख होइ न सकत मन मोरा।।

विभिन्न कार्यों में कुशलता से यह कठिन कार्य होता है। हनुमानजी ने करके दिखाया। कौशल मे वृद्धि से बड़े से बड़े को वश में करना संभव है।

इसतरह जातिबोध से उत्पन्न स्वाभिमान को नकारात्मक से दूर करके सकारात्मक बनाया जा सकता है। इससे देशहित तथा आत्महित दोनों साध्य हैं।

(178)
ज्ञान-विज्ञान

ज्ञानविज्ञान तृप्तात्मा कूटस्थो विजितेन्द्रियः।
युक्त इत्युच्यते योगी सम लोष्टाश्मकाञ्चनः।। (गीता)

परम तत्व, परमेश्वर के विषय में शास्त्रीय ज्ञान तथा, मनन के द्वारा, उस तत्व का बोध (प्रयोग सिद्ध ज्ञान) आत्मस्वरूप (सोऽहम्) में हो जाना ज्ञान और विज्ञान की पूर्णता है। ज्ञान-विज्ञान के होने पर आत्मतृप्ति हो जाती है। तब जीव अविचल रहकर इन्द्रियों और उनके विषयों का स्वामी हो जाता है। कृतकृत्य हो जाने पर कुछ ज्ञातव्य, कर्तव्य या प्राप्तव्य नहीं रह जाता है। इस तरह असंग और

अकाम होने पर योगी को समत्वयोग की सिद्धि कही जाती है। यह सदेह मुक्ति का लक्षण और विदेह मुक्ति की पात्रता है।

भौतिक विषयों के ज्ञान और उनके प्रयोग से प्राप्त परिणाम के, व्यावहारिक सदुपयोग होने की संभव होने पर, उससे लोक में सुयश तथा आत्मसंतुष्टि होती है। इससे सम्मान व सद्गति की पात्रता होती है।

आत्महित की कामना से प्राप्त आध्यात्मिक ज्ञानविज्ञान और जनहित की कामना से प्राप्त भौतिक ज्ञानविज्ञान, दोनो श्रेयस्कर हैं। प्राथमिक उद्देश्य और प्राप्त सिद्धि के उपयोग में उच्चाशयता आवश्यक है। अपनी अभिरुचि और योग्यता के अनुसार चयनित उद्देश्य की प्राप्ति केलिए तप करना कर्मयोग है।

(179)
सूचना

एक राजनैतिक संगठन का पंजीयन कराने की योजना, दो वर्ष पहले ही बनाई गई है। इसके लिए आवश्यक संविधान, सदस्यता, अभिलेखों का संग्रह आदि किया गया है। राजनैतिक चिंतन में शुचिता और उससे सामाजिक, सांस्कृतिक, प्रशासनिक और राष्ट्रीय कार्यकलापों मे मिथ्याचार को दूर करके, सत्य और न्याय की पुनः प्रतिष्ठा करना इसका उद्देश्य है। सत्ता लेने के लिए नहीं, सामाजिक जागरण के बल से, सत्ता को प्रभावित करने की क्षमता के लिए प्रयास किया जायेगा।इस दिशा में समान विचार के मित्रों के साथ कई बैठकें की गईं। समय की मुख्य धारा के विपरीत चलने में तैयारी करना तथा कुछ उत्साही युवकों को सम्मिलित करने के लिए कार्यक्रम को स्थगित कर दिया गया है। इस पर चिंतन करके उचित योजना बनाई जा रही है। यथासमय अग्रिम कार्यवाही की जायेगी। योग्य और उत्साह सम्पन्न पदाधिकारियों का संग्रह करने का प्रयास है।

सहयोगी मित्रों को सूचनार्थ एवं आवश्यक कार्यवाही हेतु प्रेषित है।

(180)
विरोध भी लाभकर (प्रथम चरण)

किसी अच्छे कार्य में लोगों का समर्थन और सहयोग मिलता जाय तो सफलता शीघ्र मिलती है। उसमें लोगों का विरोध होने पर कठिनाई होती है। इस कारण से विरोध को बुरा मानना स्वाभाविक है। कार्य के सहज ढ़ंग से होने पर

व्यक्ति अपनी तत्कालीन योग्यता और क्षमता में वृद्धि किये बिना ही, सफल हो जाता है। विरोध होने पर, सामान्य लोग जनमानस पर आक्षेप करते हुये, कार्य को छोड़ देते हैं। उत्तम, मनस्वी कोटि के लोग उस विरोध से भी लाभान्वित होते हैं। वे धैर्य के साथ, अपनी योग्यता और क्षमता में वृद्धि करते हुए, विरोधियों का मुंह बन्द करके सफलता प्राप्त कर लेते हैं। इससे उनको कार्यसिद्धि के साथ ही सुयश, धैर्य और योग्यता में वृद्धि का लाभ भी होता है।

उपर्युक्त ज्ञान का उपयोग वर्तमान सामाजिक एवं तत्संबन्धी समस्याओं के निराकरण और उसमें होने वाले विरोध से विशेष लाभ लेने में किया जा सकता है।

(181)
विरोध भी लाभकर (द्वितीय चरण)

मित्र और सुहृद दोनों शब्द समानार्थक नहीं हैं। मित्र परस्पर स्वार्थों की पूर्ति के लिए बनते हैं। सुहृद अकारण उपकार करने वाला होता है। ब्राह्मण होने पर प्रायश्चित कराने के रूप में, राजा होने पर दण्ड के रुप में, चिकित्सक होने पर शल्य-क्रिया करके भी कुछ तरह के लोग सुहृद बने रह सकते हैं। जाति, धर्म आदि के पूर्वाग्रह से युक्त व्यक्ति कुछ लोगों का मित्र बन सकता है। वह निष्पक्ष रहकर मानवता का सेवक नहीं बन सकता है, उसके निर्णय बहुधा सदोष होते हैं। लोकोपकार करने वाला सुहृद निष्पक्ष और उदार होने के साथ ही क्षमाशील भी होता है। क्षमा समर्थ व्यक्ति का आभूषण है और दुर्बल की बुद्धिमानी है। सुहृद अपने बुद्धि और मनोबल के कारण समर्थ होता है।

अपनी संस्कृति के इतिहास में सुहृद कोटि के ब्राह्मणों और राजाओं की अनेक कथायें हैं। ऐसे ब्राह्मण ॠषि कोटि में रहकर न्याय और सत्य पर आधारित नीति बताते थे। उसकी रक्षा के लिए वरदान और शाप भी देते थे। अतः उन्हें भूसुर कहा जाता था। राजा उस नीति का प्रवर्तन करता था। सत्य के मार्ग पर रहकर सुहृद कोटि में रहने के कारण उसे राजा (प्रजा को रंजित करने वाला) कहा जाता था। अब यह सब बातें भले ही अवांछित लगती हों किन्तु सुहृद होने का महत्व अब भी यथावत है।

मुसलमानों ने ब्राह्मण को, अपने धर्म के प्रचार में, सबसे बड़ा बाधक और शत्रु समझा। यही मान्यता अंग्रेजों की भी रही। वे तो ब्राह्मण के विरोधी थे ही, अब, कुछ खानदानी लोगों को छोड़कर, देश की समस्त जातियां ब्राह्मण को प्रथम शत्रु मानते हैं। इतना विरोध और अवमानना होने पर भी ब्राह्मण अब भी, तुलनात्मक दृष्टि से, प्रबलतर है किन्तु ह्रासोन्मुख है। ऐसी स्थिति में, देशहित और संस्कृति की रक्षा के लिए, विरोध से लाभ लेने वाली नीति उपयोगी है।

आवश्यकता है कि ब्राह्मण सत्य और न्याय के आधार पर रहकर, लोक के लिए सुहृद बने। ब्राह्मणत्व को जाग्रत करने पर उनकी योग्यता और, सामर्थ्य में वृद्धि होगी। कुछ ब्राह्मणों के भी समर्थ हो जाने पर, बड़ा लाभ होगा। तब देश की समस्याओं का समाधान आरंभ हो सकता है। यदि अनाचार बढ़ता ही गया तो शीघ्र ही युगांत होगा। तब समर्थ ब्राह्मण ही, मनु की तरह, बचेंगे और वे ही सनातन संस्कृति के संवाहक बनेंगे। विरोध के समुद्र का मंथन करके अमृत निकाल सकते हैं।

(182)
एकता में अनेकता

कहा जाता था कि भारत में अनेकता में एकता है। अब यह बात बहुत पुरानी और ठीक उलटी होगई है। 'एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति' - ऋग्वेद के इस अंश में लिखा है कि चिंतक लोग अनेक युक्तियों से एक परम तत्व का ही प्रतिपादन करते थे। उस चिंतन से, संस्कृति के आधार पर, प्रत्येक क्षेत्र में एकता हो जाती थी। अब अनेक उक्तियों से अनेक तरह के हीन कोटि के मूल्यों को परम सिद्ध किया जा रहा है। कहने को संविधान एक है किन्तु इसमें कोई परम मूल्य नहीं है और जो लिखा है वह भी सर्वथा सुरक्षित नहीं है। गाँव, समाज व देश की बात दूर है,घर के चौके तक में राजनीति के प्रवेश होने पर परिवार भी विघटित होरहे हैं। कहीं भी एकता का दर्शन करने वालों के नेत्र सदोष हैं।

अब यहां सांप्रदायिक अनेकता तो रहेगी ही। इसे समाप्त करना कठिन है। मौलिक भारतीय संस्कृति के निष्प्राण ढांचे में अधिकांश जनता समाहित हैं। वह यहाँ की पहचान और अपनी धरोहर है। उसके शुद्ध स्वरूप की प्रतिष्ठा ईमानदारी पूर्वक किया जाय तो देश में व्याप्त जातीय और जीवन के मूल्यों की अनेकता समाप्त हो सकती है। पुनः एकता संभव है।

(183)
ओषधि और विष

भवरोग तथा सांसारिक बाधाओं के निवारण अर्थात् मानव के निःश्रेयस और अभ्युदय की सिद्धि के लिए, अमृत तुल्य ओषधि के रूप में, धर्मशास्त्रों की रचना की गई। कालचक्र के प्रभाव से, इसी ओषधि को मार्क्स अफीम कहता है तो भारत में बहुतेरे लोग इसे ब्राह्मणों द्वारा शोषण का उपाय तथा अन्य लोग इसी तरह के अनेक आक्षेपों का पात्र मानते हैं। यह आक्षेप भी अनर्गल नहीं हैं। ओषधि भी, विकृत होकर, विष हो जाती है और विष भी, शोधन करके, विशौषधि हो जाता है।

मानव जीवन के आदर्शों, सामाजिक मूल्यों तथा आध्यात्मिक अनुभूतियों को जाग्रत रखने के लिए आचार-व्यवहार में शुद्धि, सत्य और न्याय का पालन आदि धर्म के लक्षण हैं। उद्देश्य और विधि दोनों का विधान धर्मशास्त्र में है। यह ओषधि हैं। इनका अनादर करके, अपने स्वार्थ के लिए, मनमानी धर्म का निरूपण और आचरण करना धर्म को ही विष बनाना है। केवल जेहाद, मेला, यात्रा, मंदिर आदि के दिखावटी कार्यक्रमों के आधार पर जातीय और साम्प्रदायिक गुटबंदी और दल बनाना अधर्म ही नहीं, धर्म की बिक्री व उसका हनन है।

अधर्म और धर्म की हत्या दोनों में भेद है। धर्म के विपरीत, निषिद्ध कार्य अधर्म है। इसके लिए प्रायश्चित और दण्ड हो सकता है। मिथ्याचार द्वारा अधर्म को धर्म सिद्ध करना तथा उसे ही प्रचारित करना धर्म की हत्या है। धर्म की हत्या होने पर वह स्वयं हत्यारों को मारता है। 'धर्म एव हतो हन्ति'।

प्राकृतिक नियमों और मानव प्रकृति के सम्यक अध्ययन के आधार पर, देशकाल के अनुसार, धर्मों का विधान चिन्तकों और ऋषियों ने किया है। संयम और नियम मनुष्य को विषतुल्य लगते हैं किन्तु इसी विष के पान से अमरत्व मिलता है। कोई ईश्वर को माने या न माने, लेकिन उसके द्वारा संचालित प्रकृति के नियमों के अधीन सब को रहना पड़ेगा। उसके नियम धर्म हैं, जिनका अनादर करके विष का सेवन करने के स्थान पर उनका पालन करके उन्हें, लोक-परलोक दोनों के लिए ओषधि रूप बनाये रखना बुद्धिमानी है।

(184)

सत्य का विकल्प नहीं

करने में सरल (आसान) और परिणाम देने में सर्वोत्तम कार्य का प्रदर्शन और प्रचार करनेवाले मिथ्याचार करते हैं या स्वयं मोहग्रस्त होते हैं। कठिन तपस्या से ही सर्वोत्तम की सिद्धि संभव है ।यही सत्य है। इसका विकल्प नहीं है।

आध्यात्मिक, धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक या आचार-व्यवहार संबंधी किसी कार्य में सत्य के विकल्प का प्रचार करने वाले अन्त में स्वयं दुखी होते हैं तथा औरों के लिए कष्ट का कारण बनते हैं। उदाहरण के लिए सनातन धर्म का विकल्प बौद्धधर्म मान लेने पर देश सभी तरह से समस्याग्रस्त हुआ और आक्रान्ताओं के अधीन हुआ। इसी तरह सनातन धर्म का विकल्प सगुण साकार भक्ति को स्वीकार करने पर सामाजिक मानसिकता में ही दासभाव या गुलामी की मानसिकता प्रवेश कर गई। राजनीति में देखें तो स्वतंत्रता संग्राम में बलिदानियों की जगह स्वार्थी समझौतावादियों के आने से देश का विभाजन हुआ और स्थाई समस्यायें बनी हैं। स्वतंत्रता के बाद भी झूठा वादा करनेवाले और प्रचारतंत्र के सहारे जनता को बहकानेवाले तथा सामाजिक विघटन द्वारा बहुमत प्राप्त करने वाले जननायक देश की सांस्कृतिक, सामाजिक और आर्थिक दशा को अपूरणीय क्षति दे रहे हैं। ऐसे उदाहरण अनेक मिलेंगे। व्यक्तिगत जीवन में सैकड़ों लोग ऐसे पाये जाते हैं।

सत्य के विकल्पों का त्याग करके,सरल मार्ग की खोज का प्रयास छोड़कर, ऋषियों द्वारा प्रतिपादित सत्यनिष्ठ तपस्या और तदाधारित आचरण का सहारा लेना व्यक्ति, समाज और राष्ट्र सब केलिए हितकर है।

(185)

जगद्गुरु की योग्यता

किसी समय भारत देश अपने को जगद्गुरु के रूप में प्रतिष्ठित करने मे सक्षम था। अपनी योग्यता से अर्जित प्रभूत सम्पत्ति के कारण यह देश सोने की चिडिय़ा कहा जाता था। दूर-दूर के लोग इस देश से आकृष्ट थे। यहां के ऋषि, कृण्वन्तो विश्वमार्यम् को ही लक्ष्य बनाकर, सबको शिक्षा देते हुये, सशक्त रहकर, अपनी महिमा को सुरक्षित रखते थे। यह बातें अविश्वसनीय इतिहास बनकर रह गई हैं।

विश्व में अनेक तरह की उपासना, साधना, पूजा, तंत्र-मंत्र के प्रयोग आदि तथा तद्नुकूल आचार-व्यवहार प्रचलित हैं। इसी तरह अनेक तरह की कलायें तथा ज्ञान-विज्ञान विकसित हैं। ऋषियों ने इन सब विषयों का रहस्य समाधिस्थ होकर जाना था। आज के वैज्ञानिक प्रयोगों का संशोधन होता रहता है किन्तु वेद और तदाधारित ज्ञान ध्रुव सत्य हैं। वैज्ञानिक लोग उनसे अब भी लाभान्वित होते हैं।

यावन्मात्र चिंतन मानव मस्तिष्क कर सकता है, उन सभी पर प्रामाणिक सामग्री भारत में उपलब्ध थी। कामशास्त्र, चौरशास्त्र से लेकर राजनीति आदि विविध उच्चस्तरीय विषय और चार्वाक से लेकर अद्वैत वेदांत तक दर्शनशास्त्र यहाँ लिखे गये थे। भूत-प्रेत, ब्रह्म, मजार से लेकर परब्रह्म तक की उपासना के विधान यहां थे। नदी, पहाड़, पेड़, पृथ्वी से लेकर आकाश तक में देवत्व की स्थापना यहां हुई थी। इस तरह, भिन्न रुचि वाले विश्व के समस्त कोटि के लोगों को संतुष्ट करने वाली सामग्री यहां उपलब्ध थी। सब के लिए आचरण का विधान था। अतः यह देश जगद्गुरु था।

जिन ऋषियों के चमत्कार से हमारा देश आलोकित था,आज उनका तिरस्कार और बहिष्कार हो चुका है। उसके बिना गुरु बने रहने की कल्पना हास्यास्पद है। अन्य विषयों में अनेक देश हमसे आगे हैं। सोने की चिड़िया के पंखों को विदेशियों ने क्षतिग्रस्त कर दिया। अब पंखों के अवशिष्ट को तोड़ने और बेचने से अर्थव्यवस्था में बड़े देशों के बराबर ट्रिलियन बढ़ाने में हम लगे हैं। विश्व का सबसे धनी भारत में बनाने के प्रयास में सबसे गरीबों की संख्या बढ़ रही है। अब अपने को जगद्गुरु मानने वालों के लिए तुलसीदास के कथन सही हैं-

भूमिपरा चह गहइ अकासा। लघु तापस कर वाग विलासा।।
मति अति नीच ऊंच रुचि आछी। चहिय अमिय जग जुरइ न छाछी।।

निष्कर्षतः, अपने देश की गौरवगाथा को स्मरण करना सराहनीय कार्य है। उस गौरव को पुनः स्थापित करने के लिए अपनी पुरानी योग्यता को प्राप्त करने का संकल्प और तदनुसार कार्यवाही सत्यनिष्ठा से करनी होगी। इस दिशा में पदार्पण तो करें।

(186)
सत्य का प्रकाशन

आज के समय में आकर्षक लेखक, वक्ता, सक्रिय तथाकथित समाजसेवक, राजनेता या सिनेकर्मी होने पर किसी व्यक्ति के हानिकर विचारों और क्रियाकलापों का भी प्रचार तेजी से हो रहा है। यह प्रचार माध्यमों का युग है।

सदाचार, नैतिकता, संस्कार, संस्कृति, सत्य पर आधारित चिंतन और उनके द्वारा व्यक्ति, समाज और राजनीति को सही दिशा-निर्देश देकर राष्ट्रीय हित करने वालों की सीधी बातें अप्रकाशित रह जाती हैं। ऐसे संदेशों को आदर देनेवाली पत्रकारिता की आवश्यकता है।

आज के उपेक्षित चिंतक भी, स्वच्छ हृदय से, अपना कार्य करते रहें। समय करवट लेगा। प्राचीन काल में स्थापित सत्य का पुनः प्रकाशन होगा। 'ऐहैं कबहुँ बसंत ऋतु। चरैवेति।।'

(187)
सत्याय मितभाषणम्

रघुवंश के राजाओं की विशेषता का वर्णन करते समय कालिदास ने लिखा- 'सत्याय मितभषिणाम्'। इसका तात्पर्य यह भी है कि अधिक बोलने वाले असत्य बोलते हैं। वाणी मे संयम रखने पर ही उसमें सत्य सुरक्षित रहेगा। दूसरी तरफ, मौन रह जाने से भी सत्य का रक्षण नहीं हो सकता है। महाभारत में 'शङ्केरन् वाप्याकूजनात्' - लिखकर मौन रहने पर शंकास्पद होने की संभावना कही गई है। उसमें सहमति, भय, लोभ या पक्षपात भी कारण हो सकते हैं। अतः मितभाषण ही उचित है।

भाषण देने, प्रवचन करने, प्रचार करने और सामाजिक व्यवहार मे मौन रहने का हथकंडा अपनाने वाले व्यवसायी लोगों की बातों और आचरण में निहित सत्य और उनकी विश्वसनीयता को परखने केलिए यह उत्तम सिद्धांत है। आजकल के प्रचार के बवंडर में सत्य को पकड़ने वाले जिज्ञासु को मितभाषण से मार्गदर्शन मिल सकता है।

(188)
योग और श्रद्धा

वैदिक परंपरा के अनुसार गीता में भी ज्ञानयोग और कर्ययोग के नाम से अभिहित दो तरह के योगों की साधना के विधान बताए गये हैं। ज्ञानयोग की साधना में साधक की श्रद्धा केवल आत्मबोध (तत्वमसि, सोऽहम्) में होती है। इस से जीवनमुक्ति और विदेहमुक्ति की प्राप्ति ही उद्देश्य होते हैं। अनेक जन्म के अनुकूल संस्कारों के उदय से ऐसी श्रद्धा उत्पन्न होती है।

श्रद्धा में भेद होने के कारण कर्मयोग की अनेक शाखाएं हैं। प्रमुख रूप से भक्तियोग, हठयोग (जिसमें अनेक तरह की तपस्या तथा मंत्र-तंत्र के प्रयोग मुख्य हैं) तथा वैदिक कर्मयोग के रूप में यज्ञादि साधनायें विहित हैं।

भक्तियोग की, सगुण व निर्गुण, दो शाखाएं हैं। सगुण भक्ति का साधक अपने उपास्य का सानिध्य और उसकी सेवा का अवसर पाने मे श्रद्धा रखता है। जनम जनम रुचि राम पद, यह वरदान न आन - ऐसी उसकी कामना होती है। निर्गुण भक्ति का साधक, उसी आराध्य तत्व में लीन होने मे श्रद्धा रखता है। हठयोग, तंत्र-मंत्र तथा कठिन तपस्या करने वाले साधक बहुधा असंभव सांसारिक कामनाओं के भी इच्छुक होते हैं। सशरीर अमर होने की भी कामना करने वाले होते हैं।

वैदिक कर्मयोग में श्रद्धा का बहुत महत्व है। गीता में इसी का प्रतिपादन है। सकाम स्वधर्म के पालन से लोक तथा परलोक की सिद्धि तथा निष्काम कर्म से ज्ञान और मोक्ष की सिद्धि बताई गई है।

कर्मयोगी भी अपनी श्रद्धा के अनुसार ही फल पाता है। 'श्रद्धावांल्लभते ज्ञानं' - कहकर यह बताया गया है कि ज्ञान-प्राप्ति में श्रद्धा होने पर ही योगी को ज्ञान मिलता है। अन्यथा यश-कीर्ति, सम्मान आदि मिलते हैं। 'न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रं इह विद्यते। तत्स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विन्दति'- ऐसा कहकर बताया गया है की ज्ञान-निष्ठा तक पहुंचने के लिए धैर्य के साथ प्रतीक्षा करनी पड़ती है। इसके लिए दृढ़ श्रद्धा अपेक्षित है। अतः गीता में लिखा है – 'श्रद्धामयोऽयं पुरुषः यो यच्छ्रद्धः स एव सः।'

(189)
जीवन्मृत/मरणोत्तर जीवन

संत तुलसीदास ने चौदह तरह के लोगों को जीवनकाल में ही मृततुल्य कहा है-

कौल काम बस कृपन विमूढ़ा। अति दरिद्र अजसी अति बूढ़ा।।
सदा रोग बस संतत क्रोधी। विष्णु विमुख श्रुति संत विरोधी।।
तनु पोषक निन्दक अघखानी। जीवत सव सम चौदह प्रानी।

कौल का अर्थ है - बामाचारी साधना करने वाला। अन्य तेरह कोटि के हैं -कामी, कृपण, दरिद्र, मूर्ख, क्रोधी, अत्यंत वृद्ध, रोगग्रस्त, अजसी, सज्जनों और शास्त्रों का विरोधी, नास्तिक, केवल शारीरक स्वास्थ्य का इच्छुक, सब का निन्दक तथा पाप परायण व्यक्ति। श्वसन क्रिया के बन्द होने पर व्यक्ति मृत माना जाता है किन्तु यह चौदह तरह के लोग जीवन्मृत की तरह माने जाते हैं।

इन चौदह कोटि की वृहद् व्याख्या करने पर नैतिकता का त्याग करने वाले, आत्म प्रशंसा करने वाले, समाज के ऋणी रहने वाले स्वार्थी और कृतघ्न, अविवेकी, पाखंड द्वारा सामाजिक मर्यादा भंग करने वाले, अनाचारी आदि निन्दनीय कोटि के लोग भी उसी में समाहित हैं। सज्जनों द्वारा निन्दित, अपयश छोड़कर मरने वाले, मरणोपरांत अधोगामी लोग जीवित अवस्था मे भी मृत ही मान्य हैं। यह लोक बिगड़ने पर परलोक भी स्वतः नष्ट हो जाता है।

इनके विपरीत आचरण करने वाले, परोपकारी, संयमी, नैतिक, विवेकी, सत्यनिष्ठ आदि कोटि के लोग संजीदगी के साथ जीवनयापन करते हुये, समाज और देश से ऊऋण होकर, यशः शरीर को यहां छोड़कर ऊर्ध्वलोक को जाते हैं। वे मरने के बाद भी कर्मानुसार, यहां भी चिरंजीवी होते हैं। यह लोक सिद्ध होने पर मरणोत्तर जीवन भी स्वतः सिद्ध हो जाता है।

कर्म प्रधान विश्व करि राखा। जो जस करइ सो तस फल चाखा।।

(190)
अद्भुत उपदेश

दक्षिणा मूर्ति स्वरूप युवा गुरु ने प्रौढ़ शिष्यों को बताया--

भूत को पकड़कर रख नहीं सकते और भविष्य को पकड़ ही नहीं सकते हो। भूत-भविष्य के चिंतन में वर्तमान मे असंतुष्टि बनी रहेगी। केवल वर्तमान तुम्हारे पास है। इसी से भूत और भविष्य भी पकड़ मे आ सकते हैं।

शिष्यों ने आश्चर्यपूर्वक ऐसे उपाय की जिज्ञासा किया।

गुरूपदेश- भूत के चिंतन में किसी विषय में राग तो किसी में द्वेष की अनुभूति होती है। इनको पाने या बदला लेने की इच्छा होने पर अहंकार प्रबल होता है।

अविद्या का विकास अहंकार से ही होता है जो अनेक दुखों का कारण है। भविष्य के चिंतन में लोभ, आशा या भय ग्रस्त करते हैं। इससे विवेक-शक्ति कुंठित होती है। विवेक के अभाव में अविद्या ग्रस्त करती है। इससे व्यक्ति पथ-भ्रष्ट होता है, और संकट में पड़ता है।

वर्तमान, जो सदैव तुम्हारे साथ है, उसी से भूत और भविष्य दोनों को जानना संभव है। जो वर्तमान में मिल रहा है वही तुम्हारा भूत था और जैसा आचरण वर्तमान में है, वही तुम्हारा भविष्य है। अतः, अपना कर्मफल समझकर, रागद्वेष छोड़कर, वर्तमान में उपस्थित का भोग करें और ऋषियों द्वारा बताए गये सन्मार्ग पर निःशंक चलते रहें। इस तरह जीवन की साधना करने पर भूत और भविष्य दोनों वर्तमान में ही समाहित हो जाते हैं। निरापद जीवन होने पर यश-कीर्ति, विवेकख्याति, परवैराग्य और मुक्ति सभी सुलभ होते हैं।

अद्भुत उपदेश सुनकर, कृतकृत्य शिष्यों ने गुरुचरणों में अपने को समर्पित किया।

क्रमशः-

(191)
अद्भुत उपदेश (वर्तमान का कार्यक्षेत्र) (क्रम-2)

गुरूपदेश से यह प्रतिपादित है कि भूत और भविष्य में नहीं, केवल वर्तमान में, शास्त्रादेश के अनुसार, जीवित रहना बुद्धिमानी है। इसका विश्लेषण करने पर स्पष्ट होता है कि शास्त्र और क्षमता के अनुसार भविष्य का लक्ष्य निर्धारित करें और अपने कुल, जाति, धर्म, संस्कृति तथा देश के इतिहास से प्रेरणा व शिक्षा ग्रहण करें। यह मान्यता कर्मवाद के सिद्धांत का पोषक है। इसमें भूत या भविष्य का चिंतन करके दुखी होना नहीं कहा गया है।

व्यक्ति के लिए कर्मवाद का जो स्वरूप है, वह समूह, देश और विश्व के लिए भी तथैव है। उदाहरण के लिए भारत का वर्तमान समस्याग्रस्त स्वरूप इसके इतिहास मे निहित कर्मों का फल है। इसका आरंभ ब्राह्मण और क्षत्री के वर्चस्व की लड़ाई से हुआ। इससे दोनों जातियों का पतन हुआ। ये दोनों मिलकर, अग्नि और वायु की तरह प्रबल शक्ति हैं और परस्पर विरोध करने पर समाज और देश को ध्वस्त कर सकते हैं। महाभारत काल की यह मान्यता इस कलियुग में भी सही है। ब्राह्मण के सशक्त रहने पर उसका अनुशासन क्षत्री पर रहता था। ब्राह्मण के निःशक्त होने पर क्षत्री तथा उस स्वभाव के ब्राह्मण भी, दस्यु होकर प्रजा का शोषण करने लगे। इसका परिणाम है कि देश में जातिगत युद्ध की स्थिति उत्पन्न है। इतिहास के इस तथ्य से शिक्षा लेकर योग्यता और ब्राह्मणत्व को आदर देने, और अग्नि तथा वायु के परस्पर सहयोगी बनने पर देश की समस्याएं समाप्त हो सकती हैं। ऐतिहासिक योद्धाओं के नाम से जातीय दल बनाना समस्या को बढ़ायेगा। वर्तमान के चिंतन की यही उपयोगिता है कि शास्त्रों और इतिहास से शिक्षा लेकर नये युग का निर्माण करें। इसके लिए स्वच्छ कुलाचार से सम्पन्न चिंतकों और जन-नेताओं को आगे आना आवश्यक है।

(192)
जाति और वर्णव्यवस्था

भारतीय सामाजिक संरचना में जाति और वर्ण दो अलग- अलग व्यवस्थायें हैं। जाति अपरिवर्तनीय होती है।यह माता पिता के जाति के अनुसार जन्म से ही निर्धारित रहती है। विशेष प्रतिभा जातिगत भी होती है। अतः यह प्रतिभा वर्णनिर्धारण में भी बहुत कुछ सहायक होती है। इसके अपवाद भी बहुत कुछ होते

हैं। अतः वर्ण के निर्धारण मे गुण, कर्म और स्वभाव भी महत्वपूर्ण होते हैं। *कुछ उदाहरण देखे*- कर्ण को क्षत्री न मानकर सूतपुत्र कहने पर उसने अपनी प्रतिभा से वर्णनिर्धारण करके कहा- 'सूतो वा सूतपुत्रो वा यो वा को वा भवाम्यहं। दैवयत्तो कुले जन्म मदायत्तं तु पौरुषम्।।' *दूसरा दृष्टांत देखें*- बालक जाबाल ने ऋषि उद्दालक के चरणों में जाकर शिष्य बनाने की प्रार्थना किया। ऋषि ने उसका गोत्र पूछा। उत्तर में बालक ने बताया कि उसकी मां दासी का काम करते हुये बहुत लोगों की सेवा में रही है। उसी अवस्था में जन्म पाने के कारण गोत्र अज्ञात है। ऋषि ने उसे शिष्यत्व देते हुए कहा कि यह सत्य बोलता है अतः ब्राह्मण वर्ण में मान्य है। इस तरह कुलपरंपरा एवं योग्यता दोनों से ब्राह्मण वर्ण होने का विधान था।

वैवाहिक संबंध और कुलपरंपरा के विषय में जाति ही आधार होती है। यह व्यक्तिगत आचरण है, जिसे सामाजिक व्यवस्था में भेदभाव नहीं कहा जा सकता है। यह संबंध समान स्तर व खान-पान के लोगों में ही सुखद रहता है। सार्वजनिक व्यवहार में वर्ण के अनुसार वरीयता दी जाने में भेदभाव नहीं हो सकता है। इसमें योग्यता ही आधारभूत मानना उचित है। इस तरह प्रत्येक जाति के व्यक्ति को, उसकी योग्यता के अनुसार, बिना भेदभाव के सम्मान देने की व्यवस्था मनुवादी संस्कृति में रही है। इस व्यवस्था में ही रामराज्य का आदर्श स्थापित हुआ। सहस्त्रों वर्ष तक इसी व्यवस्था में रहकर सभी जाति और वर्ण, एक दूसरे के पूरक बन कर सुखी रहे तथा विदेशियों की दृष्टि में यह देश सोने की चिड़िया कहा गया।

इस स्वर्णिम व्यवस्था को प्रथम आघात बौद्ध धर्म के राजधर्म बनाने से लगा। कालान्तर में मुस्लिम और ब्रिटिश शासकों ने इसे, समाप्त करने में असफल होने पर, यथासंभव विकृत किया। महाराष्ट्र में अंग्रेजों ने, प्रलोभन देकर, दलित जाति के लोगों को अपने पक्ष में करके, उन्हें अपनी सेना मे भर्ती कर लिया। युद्ध में अंग्रेजों को जीत दिलाकर, दलित लोगों ने स्थाई जातीय संघर्ष की स्थिति पैदा कर दिया। स्वतंत्रता के बाद भी यह स्थिति यथावत बनी है। अंग्रेजों के प्रभाव से ही दलित वर्ग में विचारक भी हुए। ज्योतिबा फूले, भीमराव अंबेडकर आदि सामाजिक कार्यकर्ता भी हुए किन्तु इन लोगों की दृष्टि सम्पूर्ण भारतीय समाज के हित में न होकर, केवल जातिगत संकीर्णता तक में सीमित रह

गई। इसका प्रभाव हमारे संविधान पर भी पड़ा। फलतः समाज में सवर्ण और दलित दो वर्ग बन गए जिनमें संघर्ष चल रहा है। सवर्ण लोग गरीबों की सहायता करने और उनके उत्थान की भी बात सोचते हैं किन्तु दूसरा पक्ष उन्हें समाप्त करे दलित रूप में समतामूलक समाज चाहता है। वे अपनी योग्यता बढ़ाने के बजाय सवर्णों की योग्यता को कुंठित करके समान बनाना चाह रहे हैं। वोट बैंक की राजनीति के कारण समस्या उलझती जा रही है।

अब, सत्ता के इच्छुक सभी दलों का कर्तव्य है कि एकमत होकर देशहित को प्राथमिकता दें। मनुवादी व्यवस्था की शरण लेने पर ही देश और इसकी संस्कृति सुरक्षित रह सकेंगी। जातिव्यवस्था को समाप्त करने का प्रयास न करके आदर्श वर्णव्यवस्था को स्थापित करने का प्रयास सार्थक होगा। इससे लोकनीति और राजनीति दोनों की प्रतिष्ठा होगी।

(193)
आचार्य की महिमा

कुलगुरु वशिष्ठ के आश्रम पर जाते समय चक्रवर्ती नरेश दिलीप भी नंगे पांव चलकर पहुंचते थे। यह रही है आचार्य की महिमा। मनुस्मृति आदि आर्ष ग्रंथों मे आचार्य को सर्वोपरि सम्मान का पात्र बताया गया है। देश के उत्थान केलिए यह मान्यता अब भी प्रासंगिक है। वर्तमान के चिंतक नेल्सन मंडेला आदि ने भी कहा है कि किसी देश को बरबाद करना है तो उसकी शिक्षा पद्धति को विकृत करना पर्याप्त है। अपने देश में मैकाले ने यही करके दिखाया है। स्वतंत्रता के बाद भी मैकाले प्रभावी हैं। नई-नई शिक्षा नीतियां बनती हैं और शिक्षा का स्तर गिरता जा रहा है। इस अधोपतन को रोकना आवश्यक है।

प्राइमरी का शिक्षक आधारशिला रखता है तो विश्वविद्यालय के आचार्य शिष्य को पूर्णता प्रदान करते हैं। दोनों सम्मानार्ह हैं। आचार्य का पद कुलपति या कुलाधिपति से ऊंचा है। वे प्रशासनिक पद हैं, जो आचार्य और स्नातक से नीचे हैं। आज बेसिक शिक्षाधिकारी से लेकर कुलाधिपति तक शिक्षक की नियुक्ति से लेकर उसके समस्त कार्यों में ऐसा हस्तक्षेप करते हैं जो शिक्षक के लिए अपमान जनक होता है। अतः वह पद धन कमाने और अपमान सहने के लिए होकर रह गया है।

शिक्षक का पद चरित्र निर्माण के साथ विद्यादान के लिए होता है। इस पद के लिए उसकी योग्यता और अभिरुचि परमावश्यक हैं। उसे धन की अपेक्षा सम्मान अधिक आवश्यक है। वर्तमान व्यवस्था में, आरक्षण की व्यवस्था द्वारा, शिक्षक की नियुक्ति भी चपरासी की तरह हो रही है। आरक्षण आवश्यक है तो चतुर्थ श्रेणी तक भले किया जाय किन्तु इसके ऊपर के पदों के लिए करना देश की उन्नति में बाधक है। शिक्षक जैसे पद पर आरक्षण करना अविवेक की पराकाष्ठा है। महामना मालवीया, बाबू राजेन्द्र प्रसाद, डा. राधाकृष्णन, डा. अब्दुल कलाम आजाद जैसे कुछ लोगों ने शिक्षक का महत्व समझा था। वोट बैंक तैयार करने वाले नासमझ राजनीतिज्ञों के कारण शिक्षा का स्तर गिरता जा रहा है। बहुत से उदाहरण हैं कि राष्ट्रपति सम्मान पाने वाले शिक्षक केवल राजनीति देखते रहे और पढ़ाने का काम ही नहीं किये। उनकी सेवानिवृत्ति, साठ की जगह, पांच साल बाद पैंसठ की उम्र में हुई।

शिक्षा जगत की यह उपेक्षा देश के लिए घातक है। यह क्षेत्र वोट बैंक बनानेवाले राजनेताओं का नहीं है। धन उपलब्ध कराने के बाद, नीति-निर्धारण आदि करने में भ्रष्टाचार प्रवेश कर जाता है। इसे शिक्षकों, विचारकों, और निष्पक्ष समाज सेवियों के हाथों होने पर हितकारी शिक्षा-नीति बनाना और कार्यान्वित करना संभव होगा। तभी- 'गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु गुरुर्देवो महेश्वरः', कहना सार्थक होगा।

(194)
छोटी-छोटी बड़ी बातें

1- कर्मवाद का सिद्धांत बताता है कि प्राणी को अच्छे और बुरे कर्म का फल अलग-अलग मिलता है। एक के प्रबल होने पर दूसरा कुछ काल के लिए स्थगित हो सकता है किन्तु उसका फल यथासमय मिलकर रहता है। एक कितना भी प्रभावशाली हो, दूसरे को समाप्त नहीं कर सकता है।

बुद्धिमान व्यक्ति इससे समझ सकता है कि दुखों से बचे रहने के लिए बुरे काम से दूर रहना पर्याप्त है। ऐसा करने पर स्वाभाविक रूप से आचरण में सात्विकता आयेगी और अच्छा काम स्वतः होने लगता है। ठीक उपाय है-

'भला किसी का कर न सको तो बुरा किसी का न करना।'

2- समाज के प्रबुद्ध और प्रतिष्ठित व्यक्ति का उत्तरदायित्व होता है कि अपने समक्ष हो रहे अनाचार या अन्याय का प्रतिरोध करे। ऐसा न करने पर वह भी दोष भागी होता है। अन्याय को रोक पाने में अक्षम होने पर भी यथा समय विरोध व्यक्त करने पर वह दोष मुक्त हो सकता है, अन्यथा भीरु या पाप का मौन समर्थक माना जायेगा। अपनी प्रतिष्ठा की सुरक्षा तथा धर्मपालन के लिए सजग रहना पड़ता है।

कवि ने ठीक कहा है--

'अधिकार खोकर बैठे रहना भी महादुष्कर्म है।'-मैथलीशरण गुप्त।

3-अपने ज्ञान, धर्मपरायणता तथा नैतिकता का प्रदर्शन सामान्य परिथस्थिति में करना बुद्धिमानी है। विषम परिस्थिति में कर्ण की तरह मित्र दुर्योधन का पक्ष न छोड़ना बीर के लिए धर्मसम्मत और प्रशंसनीय है। विभीषण की तरह, संकट में, सगे भाई को भी छोड़ देना कायरता और अधर्म है। लोक में भी मान्य है कि- कहे पद और जूझे वर्ग। राम को भगवान मानने पर भी वह कार्य अनुचित था। शुद्ध हृदय से उनके हाथ समर में मरने पर भी सद्गति हो सकती थी। सही नीति है- 'आपद्गतं न जहाति ददाति काले, सन्मित्र लक्षमिदं प्रवदन्ति सन्तः।'

(195)
मौन उपदेश

असली और नकली की पहचान के लिए असली बनना पड़ता है। ज्ञान ही असली बनने का साधन है। अज्ञान रहने तक कुछ सुनने और बहुत कहने की इच्छा बनी रहती है। बोध होने पर कुछ सुनने की आवश्यकता समाप्त हो जाती है और कहने के लिये शब्द नहीं रहजाते हैं। उस ज्ञानी का उपदेश मौन ही होता है। तब - 'ज्ञानं यस्य च चक्षुरादि करणद्वारा वहिः स्पन्दते।' की स्थिति बन जाती है। उस ज्ञानार्ध शरीर के इन्द्रियों के द्वार से ज्ञान स्वतः प्रगट होता रहता है।

महान पुण्य के प्रगट होने पर मिलने वाले - तस्मै श्रीगुरवे नमः।

(196)
उपयुक्त शासनतंत्र

सत्तापक्ष और विपक्ष में नीतिगत भेद और विवाद विश्व के प्रत्येक प्रजातांत्रिक देश में देखा जाता है किन्तु, देशहित में, बहुत से बिन्दुओं पर सहमति भी बनती

रहती है। भारत में ऐसा प्रजातंत्र है जहाँ राजनीतिक दलों में किसी बिन्दु पर सहमति नहीं संभव है। आश्चर्य है कि यहां विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका में भी सहमति नहीं है। एक दूसरे पर दोषारोपण करके, स्वयं को कुशल और निर्मल बताने का यथासंभव प्रयास करने मे समय और शक्ति का अपव्यय हो रहा है।

जाति, धर्म, पाश्चात्य संस्कृति के पोषण, प्रदेश और भाषा के पक्षधर अपना दल बना कर अडिग हैं और कोई समझौता के लिए तैयार नहीं है। इस दशा मे कार्यकुशता और योग्यता का कोई मूल्य नहीं है। भ्रष्टाचार चक्रिक नहीं शंख की तरह (स्पाइरल आकृति) में बढ़ रहा है। अनेक समस्यायें मुहं फैलाये हैं किन्तु कोई दोनों हाथ में लड्डू लिए है तो कोई देखकर चीख रहा है। समझदार लोग आश्चर्यचकित और मौन हैं या अरण्यरोदन कर रहे हैं। अस्तु, इस दुर्दशा का समापन होना चाहिए।

प्रत्येक देश का संविधान वहां के सांस्कृतिक और सामाजिक स्थिति तथा जनाकांक्षाओं के अनुरूप बना है। अनेक देशों में प्रजातांत्रिक व्यवस्था है, किन्तु सब का संविधान अलग-अलग है। हमारे यहाँ की संविधान सभा का गठन ब्रिटिश सरकार ने अप्रजातांत्रिक विधि से कर दिया। यहाँ रामराज्य जैसा आदर्श प्रजातंत्र का उदाहरण और विशाल सांस्कृतिक सम्पदा थी। उस समय नब्बे प्रतिशत लोग निरक्षर और निर्धन थे। इन सब बातों को न देखते हुए, अमेरिका, आयर लैंड, जर्मनी जैसे चार-पांच देशों के संविधान तथा, आधिकांश, गवर्नमेंट ऑफ इंडिया एक्ट 1935 से नकल करके तथा कुछ स्वान्तःसुखाय बातें जोड़कर, विशालकाय संविधान बनाया गया। इस संविधान के संरक्षण में जो मजा कर रहे हैं और जो इससे क्षुब्ध हैं, वे सभी पक्ष या विपक्ष में, भीमसेना, करणी सेना आदि अनेकों जातीय और सांम्प्रदायिक संगठन बना लिये हैं। गृह-युद्ध की स्थिति आ सकती है जो शासन में आमूल परिवर्तन का कारण बन सकती है। हमारे नेता मदांध हो गये हैं। वे जानते हुये भी परवाह नहीं कर रहे हैं। अब इन सब बातों के प्रभाव पर ध्यान देना अनिवार्य हो गया है।

देशहित का चिंतन करते हुए, हमारे नेताओं को एक मंच पर आना चाहिए। साथ ही, उपेक्षित विद्वानों और विचारकों को ससम्मान आमंत्रित करना होगा। सांस्कृतिक और वैश्विक स्थिति के अनुसार संविधान का सविस्तार

पुनरावलोकन करना होगा। संस्कृति, शिक्षा, नैतिक मूल्य, राज्य के कर्तव्यों की प्राथमिकता, राजकीय कोष तथा कर्मचारी का सत्तापक्ष में दुरुपयोग, तुष्टिकरण, साम्प्रदायिक उन्माद, राजनीति का अपराधीकरण आदि विषयों को परिभाषित करने पर सहमति बनानी पड़ेगी। चुनाव आयोग को विशेष अधिकार देना तथा सीबीआई, ईडी, न्यायालय के कार्यों में पारदर्शिता सुनिश्चित करनी होगी। ऐसा करने पर दलालों का निष्कासन होगा। योग्यता को सम्मान मिलेगा। सत्ता का संघर्ष पवित्र बना रहेगा। देश रहेगा तभी सत्ता रहेगी, ऐसा ध्यान में रखने पर ही एक मंच पर आने की प्रेरणा मिलेगी।।

(197)

दण्डविधान

कोई अपराधी दोषमुक्त न हो और कोई निर्दोष दण्डभागी न बने यह आदर्श दण्डव्यवस्था है। मध्यम कोटि की व्यवस्था में अपराधी भले मुक्त होजाय किन्तु निर्दोष को दण्डित न किया जाय। अधम कोटि की व्यवस्था अन्याय की श्रेणी में है जिसमें निर्दोष भी दण्डभागी बनादिये जाते हैं। इस तरह का उत्तरोत्तर पतन सर्वेत्र हो रहा है किन्तु भारत में इससे भी आगे निन्दनीय व्यवस्था है जिसमें कानून बनाकर, जाति के आधार पर निर्दोष को दण्डित किया जाता है। तथाकथित जगद्गुरु को अपना इतिहास देखना चाहिये। निष्पक्ष रहकर अपराधी को दण्ड और निर्दोष को सुरक्षा देना, अपनी संस्कृति में, राजधर्म का प्रमुख अंग था। यूरोप के इतिहास डैनियल का न्याय विख्यात है। हमारे यहाँ ऐसे सत्यनिष्ठ, निष्पक्ष और अंतर्दृष्टि वाले राजाओं की परंपरा थी। मनुवादी नियमों से राजधर्म नियंत्रित था। राम का कुत्ते को न्याय देकर ब्राह्मण को दण्डित करने का न्याय विख्यात है। प्राणों की बाजी लगाकर, न्याय के लिए उपस्थित ऋषि पुत्र सुधन्वा और अपने ही पुत्र विरोचन के बीच श्रेष्ठता के विवाद में प्रह्लाद का न्याय विख्यात है। पुत्र के जीवन का मोह छोडकर, प्रह्लाद ने सुधन्वा को श्रेष्ठतर बताया। सुधन्वा ने भी ब्राह्मणोचित कार्य करते हुये, प्रह्लाद के पुत्र को क्षमा करके उसके प्राणों की रक्षा किया।ऐसे अनेक उदाहरणों से हमारा इतिहास और हमारी संस्कृति गौरवान्वित हैं। दण्डाधिकारी और साक्षी दोनों धर्म के बन्धन में थे और आचार-व्यवहार के नियम स्मृतियों में निबद्ध थे। विचलन की संभावना ही नहीं थी।

अब मनुष्य का आचार-व्यवहार पवित्र नहीं रह गया है। अतः उत्तम कोटि

के न्याय की आशा नहीं की जा सकती है। अपनी संस्कृति की अवहेलना करते हुये भी, विश्व में प्रचलित न्याय-व्यवस्था का अनुकरण करके मध्यम कोटि की व्यवस्था करना संभव है। भारत में अधम और अन्याय के कोटि की प्रचलित व्यवस्थाओं को तत्काल बदलना चाहिए।सत्ता का मोह छोड़कर, एस-सी. एवं एस-टी. जैसे कानूनों को वापस ले लेना चाहिए। सत्ता स्थाई नहीं है किन्तु इतिहास में बहुत दिनों तक रहने वाला अपयश स्थाई है।

(198)
संविधान और सुराज्य

अपनी संस्कृति में संविधान निर्माण का कार्य निष्पक्ष और ज्ञाननिष्ठ ऋषियों का था जो स्मृतियों के रूप में उपलब्ध हैं। देश-काल की आवश्यकता के अनुसार स्मृतियों में संशोधन भी होता रहता था। अंग्रेजों के समय तक, याज्ञवल्क्य स्मृति की मिताक्षरा टीका प्रिवी कौंसिल, तत्कालीन सुप्रीम कोर्ट, तक व्यवहार के मामलों में प्रमाणभूत थी। पहले स्मृतियों के अनुसार धर्म तथा न्याय का प्रवर्तन राज्यस्तर से होता था। उनके कारण रामराज्य होने से भारत सोने की चिड़िया और जगद्गुरु था। न्याय-सम्मत शासन का मूल स्मृतियां/संविधान थे और सदैव ऐसा ही मान्य रहेगा।

पूर्व निर्धारित नीति है कि देशकाल के अनुसार जनाकांक्षाओं की पूर्ति करनेवाले संविधान के द्वारा ही अधिकांश न्याय प्रतिष्ठित हो जाता है। उसके अनुसार बनी संसद में ईमानदार, योग्य और देशसेवी लोगों का वर्चस्व होता है। तब कानून बनाने में भी न्याय प्रतिष्ठित रहता है। आकांक्षा के अनुसार बने कानून का पालन सहज रूप से होता है। अनावश्यक हस्तक्षेप न होने पर राजकीय कर्मचारी भी ईमानदार रहते हैं और उनकी योग्यता का सदुपयोग होता है। संविधान, संसद, मंत्री तथा राजकीय कर्मचारी के स्तर से न्याय मिलने पर मुकदमों की संख्या बहुत सीमित हो जाती है। न्यायालय में भी शीघ्र न्याय मिलने से सर्वविध न्याय की प्रतिष्ठा होती है। न्याय और ईमानदारी ऊपर से आकर जनसामान्य तक में प्रतिष्ठित होने पर जगद्गुरु बनना भी संभव है।वर्तमान व्यवस्था के आधार पर देश को जगद्गुरु बनाने का सपना हास्यास्पद है। 'भूमि परा चह गहइ अकासा'- यही चरितार्थ होरहा है।

अब देश के पुनरुद्धार केलिए न्याय की प्रतिष्ठा, योग्यता को प्राथमिकता,

प्राचीन संस्कृति का संरक्षण, सामाजिक मूल्यों को वरीयता और जनाकांक्षाओं की संतुष्टि अनिवार्य है। राजकीय कार्य का निर्वाह जनबल से नहीं बुद्धिबल से होता है। कुछ बुद्धिमान कर्मचारियों द्वारा ही देश अब भी चलरहा है जिसका श्रेय मंत्री लोग लेते हैं किन्तु इससे भ्रष्टाचार को प्रश्रय मिल रहा है। विकल्प के अभाव में हम इस दुर्दशा को सहन करके भी मौन हैं।

अब समाज में प्रतिष्ठित लोगों का कर्तव्य है कि संविधान में आवश्यकतानुसार व्यापक परिवर्तन की मांग करे। जो इस कार्य को करने को प्रतिबद्ध हो उसके दल को विकल्प के रूप में स्थापित करने हेतु जनसमुदाय को प्रेरित करें। ऐसे नैतिक राजनैतिक दल का उदय संभव है।

(199)

सत्य का दर्शन

ऊर्ध्वबाहुः विरौम्येष न च कश्चिच्छ्णोति माम।
धर्मादर्थश्च कामश्च स धर्मः किं न सेव्यते।।

यह भीष्म पितामह की वेदना द्वापर युग में थी। इस युग में, भारत में स्वतंत्रता के प्रेमियों की वेदना भी कम नहीं है। अपनी संस्कृति, स्वाभिमान और प्राचीन गौरव का स्मरण करके, पराधीनता की मानसिकता का त्याग करने की प्रेरणा से लोग प्रभावित नहीं हो रहे हैं। मुगलों और अंग्रेजों की गुलामी में यही मानसिकता कारण थी। अब, विदेशियों की ही राह पर चलने वाले राजनैतिक दलों की गुलामी, अधिकांश लोगों को, शिरोधार्य है। नई गुलामी भी उतनी ही चिंताजनक है।

प्राचीन गौरव को पुनः स्थापित करने के लिए, अपने स्वाभिमान को जाग्रत करें। अपनी मृतप्राय संस्कृति के लिए विविध बाह्य आभूषणों का प्रदर्शन व्यर्थ है। पहले प्राचीन संस्कृति को संजीवनी शक्ति देकर जाग्रत करें। तब आभूषण भी सार्थक होंगे।

(200)

गति और उपरति

इस शरीर से, क्रिया-कलापों द्वारा, चलकर पहुंचने की कामना की अपेक्षा, चलते रहने में प्रसन्न रहना अधिक श्रेयस्कर है। पहुंचने का जश्न मनाने पर प्रगति

रुक जाती है। अतः- चरैवेति ही हितकर है। इससे, समय आने पर गति से स्वतःउपरति हो जाती है। यह कर्मयोग की प्राथमिक सिद्धि है।

चरैवेति के ब्रती का, बाह्यकरण द्वारा चलने से उपरति होने पर अन्तःकरण से यात्रा आरंभ होती है जो अनन्त तक पहुंचानेवाली होती है। अन्त में, इस अनन्त को अपने अन्दर ही पाने पर कृत-कृत्यता की अनुभूति होती है। फलतः यात्रा की आवश्यकता समाप्त हो जाती है। दो तरह की यात्रा है, अतः-चरैवेति चरैवेति दो बार कहा गया है।

(201)
शब्द और अर्थ

जब शब्द से अर्थ स्फुटिक होता रहता है तो प्रयोक्ता कुशल माना जाता है। शब्द से विपरीत अर्थ निकले तो प्रयोक्ता और उसके आशय गूढ़ होते हैं। आजकल प्रयोग में आ रहे दो शब्दों की व्याख्या की जा रही है -

लोकनीति और राजनीति दोनों स्वस्थ रहें तो एक-दूसरे के सहयोगी होते हैं। जब, लोक प्रबल होता है तो दुर्बल राज्य भी प्रबल हो जाता है। जब, लोक दुर्बल (मृतप्राय) और राज्य प्रबल होता है तो दुखद स्थिति पैदा होती है। तब यह दशा होती है - 'नरपति हितकर्ता द्वेषतां याति लोके, जनपद हितकर्ता द्विष्यते हि नृपेंद्रैः'। अर्थात राज्य का हितचिंतक लोक में निंदित होता है और लोक का हितचिंतक राज्य का कोपभाजन होता है। ऐसी स्थिति में लोक असन्तुष्ट होकर प्रतिक्रिया के रास्ते चलता है। इस दशा में राजकीय व्यवस्था को लोकतंत्र कहना शब्द का दुरुपयोग है। जब लोक ही नहीं है तो लोकतंत्र कैसे सिद्ध होगा। यह तो किसी विकलांग को दिव्यांग कहकर उसका उपहास करना जैसा है।

परिवार से लेकर पूरा समाज राजनैतिक हस्तक्षेप से मुक्त करके उनको स्वतंत्र और शिक्षित करने पर ही लोकतंत्र संभव है। विकलांग को दिव्यांग कहने से नहीं, उसे स्वावलंबी बनाकर उचित सम्मान के योग्य बनाने से उसकी सहायता होगी। नाम से नहीं गुण और कर्म से शब्द सार्थक होता है।

क्रमशः-

(202)
शब्द और अर्थ-(2)

भरतीय संस्कृति में वैदिक ज्ञान की उपजीव्यता, यज्ञों का विधान, लोक तथा परलोक व पुनर्जन्म की मान्यता, जीवन के निर्धारित उच्चतम मूल्य, आचार-व्यवहार में शुचिता, वर्णसंकरता से सुरक्षा हेतु नारी का विशेष स्थान, परंपराओं की श्रृंखला आदि आन्तरिक पक्ष तथा पर्व, उत्सव, तीर्थ आदि बाह्य पक्ष आधारभूत थे। यह संस्कृति किसी संम्प्रदाय का बोधक नहीं बल्कि अनेक गुणों, और विश्वबंधुत्व के संदेश का संवाहक रही है। साक्षात् वैदिक साहित्य से निर्गत सनातन धर्म के अलावा, वैदिक कर्मकांड के विरोध करने और धार्मिक क्रियाओं के सरलीकरण के उद्देश्य से उत्पन्न जैन, बौद्ध, सिख, कबीरपंथ आदि अनेक संम्प्रदाय भी वेदों के ज्ञान से ही अनुप्राणित हैं। अतः यह भी भारतीय संस्कृति के उपासक हैं। अपनी व्यापक दृष्टि के कारण ही भारत के अलावा विश्व के सभी देशों में इस संस्कृति के अंश मिलते हैं। भारत में प्रचलित संप्रदायों को न मानने वाले भी, इसके कुछ अंश ग्रहण किये हैं। अतः यह विश्वगुरु रहा है। कहीं भी रहें, इस संस्कृति को अपनी मानने वाले हिन्दू कहे जाते हैं। मुख्य रूप से यह जातिवाचक नहीं वल्कि गुणवाचक शब्द है। गौड़रूप से इसके उपसकों को भी हिन्दू कहते हैं। अतः, भारतीय संस्कृति को माननेवाले हिन्दू कहना उचित है।

अब हिन्दू शब्द मुख्य अर्थ में, गुणवाचक न रहकर, गौड़ अर्थ में जाति व संख्यावाचक होने से राजनीति के शब्दकोश का अर्थ रखने लगा है। हिन्दू खतरे में है कहने का तात्पर्य यह नहीं रहता है कि हिन्दू संस्कृति खतरे में है। इसका सीधा अर्थ है कि हिन्दुओं की जनसंख्या और सत्ता खतरे में है। संस्कृति को खतरा पैदा करनेवालों की सत्ता चली गई। स्वदेशी शासन में जनसंख्या में वृद्धि पर नियंत्रण, समान नागरिक संहिता आदि पर कार्यवाही न करके दूसरे को लांछित करना वोट बैंक की अहितकर राजनीति है।

हिन्दू को खतरे से बचाने के लिए इस शब्द का मुख्य अर्थ समझा जाय। भारतीय संस्कृति के आंतरिक पक्ष का पोषण करने के लिए संविधान को तदनुरूप बनाना, स्वतंत्रता के बाद बने तथा बन रहे कानूनों को संस्कृति तथा परंपराओं के

अनुरूप करना, न्याय और लोकनीति की प्रतिष्ठा करना जैसे कार्यों को सत्यनिष्ठा से करना आवश्यक है। सही शब्दार्थ को ग्रहण करने पर उसका आचरण श्रेयस्कर होगा।

(203)

भारतीय नारी

प्रत्येक देश में नारी की पहचान और मर्यादा वहां की संस्कृति के अनुसार होती है। अमेरिकन, यूरोपीय, अरबियन, तालिबानी, चीनी, अफ्रीकन आदि नारियों के वेषभूषा, सौंदर्य के मापदंड व सामाजिक मर्यादा में अब भी अंतर है। भारतीय संस्कृति वैज्ञानिक चिंतन पर आधारित होने के कारण बहुत विकसित रही है। अतः यहां नारी का स्वरूप, उसकी मर्यादा और सामाजिक स्थान उच्चतम स्तर के रहे हैं। कुलीन लोगों में वह स्वरूप अब भी सुरक्षित है।

कन्या की प्राथमिक और सबसे महत्वपूर्ण शिक्षा का दायित्व गर्भ से ही उसकी माता व बाद में दादी का भी होता है। अपनी तथा पिता व ससुराल दोनों के कुलों की मर्यादा की सुरक्षा के संस्कार जाग्रत व दृढ़ होना शिक्षा की नींव है। इसके बाद लड़की, अपनी रुचि और क्षमता के अनुसार अन्य विषयों में पारंगत होकर, आदर्श भारतीय नारी बनती है।

ससुराल में प्रथम आगमन पर लक्ष्मी रूप में मानते हुए, सास सोने/चांदी के दीपक से आरती करके उसका पैर छूती है। घर में, पंचयज्ञ आदि धार्मिक क्रियाओं, कुलपरंपरा तथा संस्कृति के संरक्षण का निर्वाह नारी ही कराती है। संतान को उत्पन्न करके सृष्टिविधान और भविष्य की व्यवस्था नारी करती है। अपने गुणों के कारण गृहिणी पद पाकर नारी, कभी पूज्य तो सदैव सम्माननीय रहती है। समाज में भी, शालीन ढंग से, अपनी योग्यता का प्रदर्शन करके नारी बहुमान्य होजाती है। अपने शील के कवच से तथा पिता,पति या पुत्र के साथ रहकर वह सुरक्षित रहती है।

कुलपरंपरा और पातिव्रत धर्म का पालन करने वाली, अपने सौंदर्य का प्रदर्शन न करने वाली नारी कुलांगना कही जाती है। इस धर्म को न मानने वाली नारी का भी एक समुदाय होता था। उन्हें वारांगना कहा जाता था। वे भी समाज का अंग होती थीं। उनके आचरण की भी मर्यादा होती थी। मनचले युवक

और युवतियां भी मर्यादित ढंग से अपने कामेच्छा और अर्थार्जन के कामना की पूर्ति कर लेते थे। इससे समाज गुप्त व्यभिचार की व्याप्ति से बहुत कुछ मुक्त रहता था।

भारतीय नारी का स्वरूप सुरक्षित रखने के लिए, अर्थार्जन और कामवासना की तृप्ति के लिए भारतीय दृष्टि से निन्दनीय जीवनचर्या करने वाली नारियों को एक अलग वर्ग में रखा जाय। वे भारतीय नारी का आदर्श न बन पायें। पातिव्रत धर्म, वर्णशुचिता, शील आदि द्वारा कुलांगना बनी रहकर अपनी योग्यता का प्रदर्शन करने वाली नारियों को विशेष सामाजिक प्रतिष्ठा देने पर भारतीय नारी का स्वरूप सुरक्षित रहेगा। ।

(204)
नारी का भारतीयकरण

किसी भी देश में देखें, अपने देश और संस्कृति की मान्यता के अनुरूप रहने पर ही वहां की नारी बहुमान्य और सशक्त रहती है। स्वदेशी रुचि के अनुसार आचरण न रहने पर, वह अपने देश में पति और बहुसंख्यक लोगों द्वारा तिरस्कृत रहकर अशक्त हो जाती है। विदेशी रीति से निम्न स्तरीय सम्मान मिलने पर वह घर और घाट कहीं की नहीं रह जाती है। नारी के सशक्तीकरण के लिए उसकी संस्कृति के अनुसार गृहिणी पद पर प्रतिष्ठित करना तथा प्रतिभा के अनुसार समाज और देश की सेवा में योगदान के लिए समर्थ बनाना आवश्यक है।

आजकल नारी के सशक्तीकरण का प्रयास हो रहा है। वर्तमान दशा में भारतीय नारी दुर्बल अवश्य है किन्तु उसका सशक्तीकरण करना लोकनीति के क्षेत्र का कार्य है, राजनीति का नहीं। राजनैतिक प्रयास से नारी, भारतीय न रहकर पाश्चात्य संस्कृति की हो रही है। अपनी मर्यादा से विहीन होने पर वह अपने पुरुष के सम्मान से वंचित होकर और अशक्त हो रही है। कुलांगना अपने अनुपम सौंदर्य की विक्री नहीं कर सकती है। उसका सौदर्य शील से आच्छादित रहता है। विश्वसुन्दरी आदि की प्रतिष्ठा भारतीय नारी नहीं चाहेगी। अंग-प्रदर्शन भारतीय नारी का अपमान है। यह विदेशी संस्कृति और राजनैतिक सशक्तीकरण की देन है। लिव-इन आदि कानूनों द्वारा नारी को स्वतंत्र नहीं भोग्या बनाकर उसे अशक्त और अभारतीय बनाया जा रहा है।

आजकल के साधु-संत, नेता, मंत्री, बरायनाम विद्यार्थी तथा मनोरंजन के क्षेत्र मे कार्य करने वालों का यौनाचार संबंधी आचरण पूर्णरूपेण संदिग्ध है। किसी स्त्री के साथ एक आसन पर बैठने और एकांत में रहने पर किसी सामान्य मनुष्य की बात ही नहीं ऋषियों के लिए भी पतन का कारण मान्य है। केवल शंकर जी का आचरण अपवाद के रूप में मिलता है। पहले पुरष ही स्वैरी होकर स्त्री को स्वैरिणी बनाता था। सशक्तीकरण के प्रयास में स्त्रियां स्वतः स्वैरिणी हो रही हैं। अतः राजनीति के प्रभाव से नारी सशक्त बनने की जगह पदच्युत होकर अशक्त हो रही हैं।

नारी के सशक्तीकरण के लिए वर्तमान संदेहास्पद राजनैतिक व्यवस्था को तत्काल बन्द करना और लोकनीति को इस कार्य के लिए स्वतंत्र करना पड़ेगा। कानून के द्वारा पुरुष को नारी के साथ व्यवहार में पारदर्शिता रखने को बाध्य करना, पर्याप्त राजनैतिक सहयोग होगा। माता-पिता व परिवार के द्वारा उचित शिक्षा, शिक्षानीति में सामाजिक मान्यता के अनुरूप व्यवस्था आवश्यक हैं। भारतीय संस्कृति में सर्वमान्य पातिव्रत धर्म को आदर देना प्राथमिक शिक्षा है।

वेश-भूषा, रहन-सहन, संबधों के निर्वाह आदि में कुल परंपरा के पालन की बाध्यता करना आवश्यक है। पराये पुरुष के साथ सामाजिक व्यवहार में पारदर्शिता रखने का स्वभाव हो। सर्वोपरि आवश्यक शील होता जिसके कवच से आच्छादित नारी सशक्त बनी रहती है। भारतीयकरण ही नारी का सशक्तीकरण है।

(205)

आदान-प्रदान

आदान-प्रदान ही लोक व्यवहार का माध्यम है। यह सृष्टि का स्वाभाविक विधान है जो प्रकृति में भी देखा जाता है। वायु द्वारा पृथ्वी से जल का शोषण करके वृष्टि द्वारा उसे वापस देना, वृक्ष द्वारा कार्बन का शोषण करके आक्सीजन देना आदि प्राकृतिक आदान-प्रदान का स्वरूप है। मनुष्य सचेतन है, अतः प्रयासपूर्वक, इसी विधान का पालन करने पर उसका लोक-व्यवहार चलता है तथा इसमें यज्ञ की भावना होने पर आध्यात्मिक शान्ति मिलती है।

केवल आदान (लेने) की भावना बन्धनकारी है। परिग्रह से बुद्धि कुंठित हो जाती है। आपत्ति काल में ली गई सहायता का भी निष्क्रय करने का प्रयास करना चाहिए। प्रत्येक आदान के लिए कुछ न कुछ देना पड़ता है। इज्जत, मर्यादा या

कोई विशेष वस्तु देना पड़ सकता है। कौड़ी के बदले मोहर देने से बचना चाहिये। इसी तरह प्रदान करने में भी सद्भाव की आवश्यकता है। पाने वाला कैसा प्रयोग करेगा, इसके लिए उसकी पात्रता का परीक्षण करना पड़ता है। त्याज्य वस्तु को किसी को नहीं देना चाहिए। सड़ा बीज उपजाऊ जमीन में भी व्यर्थ है। जैसे, अच्छा बीज भी ऊसर में डालना या हविष्यान्न की आहुति राख में करना निरर्थक है, उसी तरह श्रद्धा और विधि से रहित दान भी निष्फल है।

गीता में है – 'सह यज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः। अनेन प्रसविष्वध्व एष वोऽस्तु कामधुक्।।' अर्थात विधाता ने इस सृष्टि के साथ ही यज्ञ (आदान-प्रदान) की व्यवस्था को बनाते हुए बताया था कि यही तुम सबके लिए कामधेनु है। इसी से मनोवांछित पदार्थ मिल जायेगा।

देवताओं या उनसे अनुप्राणित प्राणिमात्र के लिए, सविधि की गई सकाम यज्ञ (आदान-प्रदान) की क्रिया स्वर्गलोक जाने का साधन है। इसी यज्ञ को निष्काम होकर करने पर कर्मयोग सिद्ध होगा जो ज्ञानमार्ग में प्रवेश कराके, मुक्तिप्रद होता है। लोक, परलोक और मोक्ष तीनों का साधन आदान-प्रदान से निष्पन्न यज्ञ से ही संभव है।।

(206)
स्वभिमान की बात

भारत भग्य विधाता हो तुम जागो भर आंखों में पानी।
बहुत हो गया अब तो चेतो, नहीं रह गई है नादानी।। -सचेतक

मुगलों के पीछे चलकर तुम समझा उन्हें विधाता।
अंगरेजों को अधिनायक कह माना था जनत्राता।।
सबने तुमको नौकर समझा तुमने भगति निभाई।
अब तो समझो अपने को तुम जागो देशी भाई।। (1)

भारत भाग्य विधाता -सचेतक

भूल गये तुम जीवनदानी वे स्वतंत्र सेनानी।
अंगरेजों के साथी जो थे उनकी बानी मानी।।
अपने भी लोगों में तुमको मिला नहीं अपनापन।
जातिधर्म की अंधभक्ति में बंधे मत रहो जनजन।। (2)

भारत भाग्य विधाता -सचेतक

नव भक्तों की भीड़ बढ़ रही खाने और कमाने को।
जनसेवा का चोंगा सबका ठगने और दिखाने को।।
परिवर्तन की बढ़ी सुनामी लाई नई गुलामी।
रामराज हित लोक संवरो मत झेलो बदनामी।। (3)

भारत भाग्य विधाता -सचेतक

ईश्वर के प्रति भक्तिमार्ग था बना गुलामों का उपहार।
अब तो उसे ठीक करने को चाहे जन में नव अवतार।।
छोड़ युगों की अंधभक्ति को करो सत्य का नव संचार।
तुम समर्थ हो नई सोच हित मत जाओ धूर्तों के द्वार।। (4)

भारत भाग्य विधाता तुम हो जागो भर आंखों में पानी।

बहुत हो गया, अब तो चेतो, नहीं रह गई है नादानी।। - सचेतक।

(207)
स्वतंत्रता

स्वतंत्रता का अर्थ और परिणाम है - न्याय। यह न्याय, बाहरी प्रभाव से आरोपित नहीं, अपने समाज और संस्कृति की मान्यता के अनुसार होता है।

(208)
व्यक्तित्व की सीमा

कोई विचारक या सामान्य व्यक्ति भी, जब किसी व्यक्ति या तत्व के गुणों का प्रशंसक ही नहीं, उसके प्रभाव से अभिभूत हो जाता है, तो वह, विशिष्ट दिखाई पड़ने वाले व्यक्ति या तत्व का, अंधभक्त हो जाता है। अंधभक्ति होने पर प्रभावित करनेवाले का व्यक्तित्व ही विचारक के व्यक्तित्व की सीमा निर्धारित कर देता है। पूर्वाग्रह के कारण उसके आगे जाने की संभावना नहीं रह जाती है। तब निर्दोष चिंतन मे असमर्थ होने से उन्नति बाधित हो जाती है। ऐसे अंधे लोग दोष सिद्ध बाबा, नेता और पाखंडी की भी भक्ति करते देखे जा रहे हैं। जिसके पास जितना पदार्थ है वह उससे अनधिक ही दूसरे को दे सकता है। निर्दोष और असीम केवल ईश्वर है। उसी की भक्ति करना व्यक्तित्व के अनन्त विकास का

साधक है। उसके अलावा किसी व्यक्ति के गुण से अभिभूत होना हानिकर अंधभक्ति है।

आर्ष ग्रन्थों में परमेश्वर के अलावा किसी तत्व को सर्वोपरि नहीं कहा गया। इन्द्रादि को भी- 'एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति' - कहकर उसी एक ब्रह्म के अंतर्गत ही कहा गया है। इस परंपरा का निर्वाह वाल्मीकि, व्यास जैसे महाकाव्य के रचयिताओं ने भी किया है। रावण आदि के पराक्रम या रघुकुल के अवतंस राम के शौर्य और गुणों का बहुशः वर्णन करके भी वाल्मीकि अपना व्यक्तित्व अप्रभावित सिद्ध करते रहे हैं। कहीं अभिभूत होने या वर्णन मे असामर्थ्य का प्रदर्शन नहीं किया है। व्यास का भी व्यक्तित्व महाभारत के कान्तार में निर्भय और सर्वातिशायी दिखता हैं। अवतारवाद की मान्यता होने पर किसी महापुरुष को ईश्वर के रूप में मानकर ही उसके सामने तुलसीदास आदि कवि अभिभूत हुए हैं। किसी सामान्य व्यक्ति के सामने अभिभूत होने की निकृष्ट प्रथा दरबारी कवियों ने आरंभ किया। उसी परंपरा मे गुलामी की मानसिकता उत्पन्न है और लोग जो भी सत्ताधारी है उसके अंधभक्त बन जाते हैं। ऐसे लोग स्वयं के भी शत्रु हैं तथा देश के स्वतंत्र होने में बाधक हैं।

आवश्यकता है कि हम ईश्वरीय सत्ता के भक्त बने। न्याय, सत्य आदि दैवी गुणों को ही ईश्वर का आदेश समझें। गुलामी की मानसिकता को छोड़कर निर्भय और स्वतंत्र रहें। अपने व्यक्तित्व के विकास की संभावना असीम रखें। मनःसंकल्प में बड़ा बल है। 'तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।।'

(209)

भारतीयता की पहचान

'जो इस देश का नागरिक हो, किसी अन्य देश के प्रति प्रगट या प्रच्छन्न आत्मीयता न रखता हो और इस धरती तथा इसकी मौलिक संस्कृति को आदर देता हो, वह व्यक्ति भारतीय है।'

विशेष संप्रदाय में भेद होने पर भी, मूल्यों के आधार पर, स्वदेशी संस्कृति ही बहुमान्य रह सकती है।

संस्कृति का स्वरूप और उसके गुण दोनों महत्वपूर्ण हैं। अर्धजरसी न्याय से संस्कृति का पोषण नहीं संभव है। मुंह जीर्ण की तरह रहे और पीछे से दूध

देने वाली हो, ऐसी गाय अर्धजरसी कही जायेगी जो होती ही नहीं है। संस्कृति के दोनों पक्ष समान रूपसे आदरणीय हैं।

(210)

धर्म के भेद और उनके फल

अनेक विद्वानों ने सार्वभौम और सांम्प्रदायिक नाम से दो तरह के धर्म बताया है। सार्वभौम धर्म विश्व में एक है, साम्प्रदायिक धर्म अनेक हैं। सनातन वैदिक धर्म में तीन भेद मान्य हैं। वे हैं-शुद्ध वैदिक, स्मार्त और पौराणिक धर्म। इनमें देश, काल और वस्तु में उपलब्ध शुद्धता के अनुसार क्रमशः सरलीकरण दिखाई पड़ता है। शुद्ध वैदिक स्वरूप लुप्तप्राय है। स्मार्त धर्म में वर्चस्व की संभावना बनी है, अतः यह प्रचलन में है। पौराणिक धर्म के धरातलीय स्तर पर आने के कारण उसमें पाखंड की बड़ी संभावना है। कबीर आदि ने, कुछ तो ऋषियों की अंतर्दृष्टि का ज्ञान न होने से, और बहुत कुछ पाखंड को ही देखकर सनातन धर्म कीं निन्दा किया। स्पष्ट पाखंड और सरलीकरण का त्याग करने पर सनातन धर्म अब भी विश्व में बेजोड़ है।

सभी धर्मों में दृष्टफल और अदृष्टफल, दो तरह की क्रियाओं का विधान हुआ है। सनातन धर्म में दृष्टफल का अंश शुद्ध वैज्ञानिक या लोकसंग्रह के लिए है। स्वच्छता, प्राकृतिक पदार्थों की भी पूजा, सदाचार, अहिंसा, सत्य, अस्तेय, अपरिग्रह, दान, दया आदि का विधान स्पष्टतः पर्यावरण की सुरक्षा, लोकव्यवस्था, विश्वबंधुत्व तथा आत्मसंयम आदि का कारक है। अदृष्टफल में ऋषियों की अंतर्दृष्टि और शास्त्र प्रमाण हैं। वर्णशुद्धि से यहां वर्चस्व और स्वर्ग तथा पितृलोक मिलता है। पंचयज्ञ मे ऋषि, देवता, पितरों, अतिथि और प्राणिमात्र को तृप्त करने का विधान है। इसे मानने वालों को लाभ देखा जाता है, अतः यह श्रद्धा और विश्वास के अभाव में भी प्रमाणित है। अदृष्टफल का अंश सभी धर्मों में है। सनातन धर्म में यह अधिक प्रयोगसिद्ध और वैज्ञानिक है।

दूसरी दृष्टि से धर्म के तीन भेद हैं- सामान्य, प्रायश्चित और ऐच्छिक। सामान्य धर्म वह हैं जिनका पालन सबको अनिवार्यतः करना चाहिए। प्रायश्चित धर्म किसी अपराध के दंड को स्वयं भोगने के लिए है। इसे यथाशीघ्र करना चाहिए। ऐच्छिक धर्म तपस्या रूपी होता है। किसी संकल्प की सिद्धि या विशिष्ट स्थान पाने के इच्छुक इसे कर सकते हैं।

धर्म अनिवार्य है जिसके पालन में तत्परता, आलस्य का त्याग तथा कट्टरता रखने पर ही वह सार्थक होता है। धर्मात्माओं के लिये यह स्वभाव से सिद्ध होता है। एक भी बुराई को स्वीकार करने पर, उसी के पीछे अनेक बुराइयां प्रवेश करजाती हैं। अतः मन चंगा तो कठौती में गंगा यह आपद्धर्म में मान्य हो सकता है, सदैव नहीं। मन की मलिनता को संकल्पपूर्वक हटायें। विश्वास रहे 'धर्मो रक्षति रक्षितः'।

(211)

अज्ञान का अहंकार

अहंकार अज्ञान का फल है। जब अहंकार प्रबल होता है तो अज्ञान प्रबलतर होता जाता है। अज्ञान का अज्ञान और अहंकार का अहंकार भी होता है। तब इस चक्र से बाहर निकलना असंभव हो जाता है। अतः समस्या को शिथिल करने या जड़ से ही समाप्त करने के लिए ज्ञान, विद्या, सत्संग, सदाचार जैसे उपायों की आवश्यकता होती है। अहंकार से आतुर व्यक्ति इन उपायों से दूर भागता है। किसी समर्थ परोपकारी व्यक्ति की कृपा से ही ओषधि का आदर हो सकता है।

अति हरिकृपा जासु पर होई।
पाउं देइ एहि मारग सोई।।

संध्यावंदन पर बैठकर आचमन करने वाले को पनि चिखवा (पानी चीखने वाला) और शंख (हड्डी जैसी लगनेवाली) बजाने पर, ब्राह्मण को ही बछड़े को खाने वाला कह देना मूर्ख तार्किक के विषय में लोक में प्रचलित कहावत है। 'जेकरे धरे हाड़ चिल्लाइ, ऊ बछडू काहे न खाइ।' इस तर्क से अज्ञानग्रस्त अहंकारी ब्राह्मण को ही दोष सिद्ध करता है। आजकल सवर्णों को इसी तरह दोष-भागी बनाया जा रहा है। अंग्रेजों का साथ देने या वर्तमान संविधान के बल पर या अवसरवादी भ्रष्ट राजनीति के सहारे अपने को स्वतंत्र व सुखी समझने वाले मूर्ख व अहंकारी लोगों से दूरी बनाए रखना ही, कुछ लोग, श्रेयस्कर मानते हैं। किन्तु बुद्धि और संयम से संपन्न व्यक्ति, इससे विचलित न होकर, समाज और देश के हित मे स्वधर्म का पालन कर ही रहे हैं।

अब विद्वानों का कर्तव्य है कि पूरे समाज को शिक्षा और सदाचार के

संस्कार देने केलिए प्रयासरत रहें। अवसरवादियों की नग्नता प्रकाशित करने और अज्ञानियों का अहंकार शिथिल कर पाने पर सवर्णों की योग्यता सार्थक होगी।

(212)

संस्कृति के मूल का संरक्षण

कोई भी संस्कृति दीर्घ काल से चले आ रहे आदर्शों का संग्रहीत स्वरूप होती है। इन आदर्शों में बहुत से उसके मौलिक स्वरूप होते हैं और कुछ सामयिक आवश्यकता के अनुसार परिवर्तनीय होते हैं। जो संस्कृति अपने मौलिक स्वरूप का संरक्षण और सामयिक परिवर्तन करने में विफल रहती है वह समाप्त हो जाती है। ऐसे उदाहरण विश्व के इतिहास में अनेक हैं। भारत की प्राचीनतम संस्कृति अब तक जीवित है क्योंकि यहाँ सुरक्षा के दोनों उपायों को करने में हमारी क्षमता बनी रहती थी। इस क्षमता में स्पष्टतः हो रही कमी के कारण अब यह संस्कृति विपन्न दिखाई पड़ रही है।

हमारी संस्कृति में वर्णाश्रम व्यवस्था, योग्यता का सर्वोपरि सम्मान, नारी का विशेष सम्मानार्ह स्थान, पातिव्रत धर्म, वर्ण की संकरत्व से रहित शुचिता, स्वधर्मपालन, पुरुषार्थ चतुष्टय, कर्मवाद, पुनर्जन्म विश्व बंन्धुत्व की भावना, यज्ञ द्वारा जनकल्याण, प्राकृतिक साधनों की देवभाव से सुरक्षा, पंचयज्ञ द्वारा सेवार्ह अदृष्ट तत्वों की उपासना तथा अतिथि सत्कार, शरणागत की रक्षा, परोपकार का महत्व आदि अनेक उत्कृष्ट मौलिक गुण थे।

बाल विवाह, सती प्रथा, छुआछूत, बेगार सेवा आदि बुराइयां भारतीय संस्कृति के मूल से एकदम असंबद्ध हैं। परंपराओं, उत्सव-त्योहार, तीर्थों व मंदिरों में पंडागिरी आदि संस्कृति के मौलिक अंश नहीं हैं। इनमें विकृति भी है। शूद्र भी ब्राह्मण की सेवा करता रहा है अतः छूने में परहेज नहीं है। छुआछूत का कुछ अंश व्यक्तिगत आचार पद्धति का अंग है, यह कोई प्रथा नहीं है। रोटी-बेटी का संबंध समान स्तर में रखना पूर्ण व्यक्तिगत आचार है जो व्यावहारिक और वैज्ञानिक है। ये श्रेष्ठता या नीचता के लिए सार्वजनिक क्षेत्र में आधार या कोई प्रथा नहीं हैं। इस तरह भारतीय संस्कृति में दृष्ट दोष देशकाल के कारण उत्पन्न और बनावटी या आकस्मिक हैं जिन्हें दूर किया जा सकता है।

विदेशी संस्कृति तथा उनसे प्रभावित भारतीयों द्वारा अपनी संस्कृति को

एकदम विकृत किया गया और यह प्रक्रिया चल रही है। ओशो जैसे तथा जाति के आधार पर आरूढ़ अनेक चिंतकों नें संस्कृति की सरिता में गंदा जल बहाकर उसकी पवित्रता ही समाप्त करने का प्रयास किया। स्वामी करपात्री, पं. हरिहर कृपालू, पं रामकुमार शास्त्री जैसे कई विद्वान हुये जो स्वामी दयानंद से अधिक विद्वान थे किन्तु यह लोग रूढ़िवादी होने के कारण कोई परिवर्तन करने को तैयार नहीं थे। सरस्वती जी ने कुछ आवश्यक परिवर्तन किया किन्तु उन्होंने संस्कृति के मूल पर भी आघात कर डाला जिससे वे बहुत सफल नहीं हुये। हमारे यहां राजा राममोहन राय जैसे कुछ समाज सुधारक सफल हुये हैं। संस्कृति का पक्ष अब गंभीरता पूर्वक विचारणीय है।

हमारे समाज सुधारक, धर्माचार्य तथा प्रबुद्ध चिंतकों का एक मंच बनने पर संस्कृति के मौलिक स्वरूप के संरक्षण तथा संविधान में आवश्यक संशोधन एवं कानूनों द्वारा हो रहे राजनैतिक हस्तक्षेप के निवारण पर विचार संभव है। एक उत्साह संपन्न, समर्थ व्यक्ति द्वारा संयोजन अपेक्षित है।